

‘जब तक उस मूर्तिमती  
 भक्ति को प्रणाम नहीं  
 करोगे, उस जीवन्त श्रम  
 के घरणों में मस्तक नहीं  
 झुकाओगे, उस सर्वहारा  
 घेतना को नमन नहीं,  
 करोगे, जो गुल्लिका-  
 अञ्जी के रूप में प्रस्तुत  
 हुई हैं, तब तक तुम्हारा  
 म हा मस्त का भिषे क-  
 संकल्प सार्थक नहीं  
 होगा, सेनापते ॥’

No-057633

Lo-43-15



वर्ष १० : अंक १० : फरवरी १९८१

११८ : गोम्मटेश्वर-अंक

गीर्वाण



## पानी और पुरुष

पानी चार प्रकार है :

एक, छिछला है और छिछला-जैसा ही दिखायी देता है;

दो, छिछला है किन्तु गहरा दीख पड़ता है;

तीन, गहरा है किन्तु उथला-जैसा प्रतीत होता है;

चार, गहरा है और गहरे-जैसा ही दिखायी देता है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के हैं :

एक, जो ओछे स्वभाव का है और वैसा ही दीखता भी है;

दो, जो तुच्छ प्रकृति का है, किन्तु बाहरी बर्ताव में गहन-गंभीर-जैसा प्रतीत होता है;

तीन, जो प्रकृति से गंभीर है, किन्तु व्यवहार से उथला/ओछा है;

चार, जो गंभीर व्यक्तित्व से संपन्न है और जिसका बाह्य व्यवहार भी वैसा ही गंभीर है ।

# तीर्थकिण्ड

विचार - मासिक

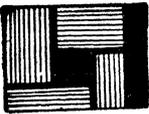
(सद्विचार की वर्णमाला में सदाचार का प्रवर्तन)

वर्ष १०; अंक १०; फरवरी, १९८१  
फाल्गुन, वि. सं. २०३७, वी. नि. सं. २५०७

गोम्मटेय्यर विन्नेषांक

संपादक : डा. नेमीचन्द जैन  
प्रबन्ध संपादक : प्रेमचन्द जैन  
आकल्पन : संतोष जड़िया

वार्षिक शुल्क : पन्द्रह रुपये; प्रस्तुत अंक : सात रुपये  
विदेशों में : तीस रुपये; आजीवन : एक सौ इक्यावन रुपये



हीरा भैया प्रकाशन

६५ पत्रकार कालोनी  
कनाडिया रोड,  
इन्दौर-४५२००१  
दूरभाष : ५८०४

नईदुनिया प्रेस,  
बाबू लाभचन्द छजलानी मार्ग,  
इन्दौर-४५२००२





आप पूरी तरह या अंशतः अपने में हों और जीवन की हर दिशा में स्वाभाविकता बरत रहे हों तो आपके चरित्र के इस विशिष्ट गुण को सहजता कहा जाएगा।

आज हम असहज हैं यानी एक-दूसरे के लिए दुर्म बने हुए हैं। यदि कोई हमें जानना भी चाहता है कि हम क्या हैं, क्या चाहते हैं, हमारी जीवन-शैली क्या है इत्यादि, तो बेचारा वह संकट में पड़ जाता है; क्योंकि हरचंद्र कोशिश पर भी वह इस बात का पता नहीं लगा पाता है कि आप आखिर किस धातु के बने हैं और आपके इरादे क्या हैं। जब आदमी इस तरह गुत्थीदार और नुकीला बन जाता है और कहीं, किसी तरह भी पकड़ में नहीं आता है, तो असहज माना जाता है।

वस्तुतः सहज होने का सीधा-सादा अर्थ है सरल, निश्चल, निर्ग्रन्थ, सुगम, दूसरों की मुश्किलों और मुसीबतों का ख्याल रख कर चलना/होना। जो आदमी उचित, नपातुला, अपने-काम-सै-काम है,

पानी और पुरुष-आवरण-२

अमृत-१०/सहजता ३

१०००-संपादकीय ५

निष्काम सेवा : इधर बीज, उधर फल  
(बातचीत-१)

-एलाचार्य मुनि विद्यानन्द ९

बाहुबली-प्रसंग (१-१०) १५-३३

प्रणाम !! भेद-विज्ञान के सूर्य-पुरुष १५  
ज्येष्ठता/श्रेष्ठता १८; घटित होना एक भोर  
का २२; प्रतीक्षित कल २५; माँ एक वह/  
एक मैं २६; विजयिनी गुल्लिका/पराजित  
स्वर्णकलश २७; आकाश ने किये प्रणाम;  
धरती ने छुए चरण ३०; यह वही है क्या  
३१; संभव है ३२.

मंगल मूर्ति (कन्नड-लावनी)

-अनु. डी.एफ. दंडिन ३६

कर्नाटक के कला-किरीट गोम्मटेश्वर

बाहुबली-डॉ. नेमीचन्द्र जैन ३७

उठी हुई मुट्ठी (कविता)

-दिलीप सुराणा ४२

जब गोम्मटेश्वर ने डग भरा

-वीरेन्द्रकुमार जैन ४३

श्रवणबेलगोल के प्राचीन संदर्भ

-डॉ. भागचन्द्र भास्कर ४९

बाहुबली (कहानी)

-जैनेन्द्रकुमार ५३

भगवान् बाहुबली

-डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री ५९

विजय : किस पर (कविता)

-मिश्रीलाल जैन ६२

अरिष्टनेमि की वापसी

-डॉ. प्रेमसुमन जैन ६३

ऐसा व्यक्ति ही मानवता को विकास के नये क्षितिज प्रदान करता है।

सहजता सरलता और सादगी का बोधक शब्द है। इस अर्थ को हम, आइये, किसी उदाहरण से हृदयगम करें। मानें हम कि किसी यात्रा पर हैं। अब सफर तो सफर है, वहाँ आप घर-जैसी सुविधाओं की आशा-अपेक्षा कैसे कर सकते हैं; वहाँ आपको किञ्चित् विवेकी और विनम्र होकर चलना होता है; किन्तु ऐसे में यदि कोई सरल प्रकृति भाई आपके लिए कुछ सुभीते जूटा देता है और आपको सुख-शान्ति की धरती पर उतार देता है तो आपको उसके प्रति कृतज्ञ ही होना चाहिये किन्तु यदि आप इसके विपरीत उसे व्यर्थ ही डाँटते-फटकारते हैं कि वह नहीं जानता कि आप कितने बड़े हैं आपके घर पर कितनी सारी साधन-सुविधाएँ हैं, और वह है कि आपके लिए कुछ भी नहीं कर रहा है (जबकि तथ्य यह है कि वह अपनी सीमा में सर्वाधिक कर रहा है) इत्यादि, तो उस समय आपका व्यवहार असहजता की कोटि में आता है।

इसी तरह यदि आप कोई सामान खरीदने निकले हों और आपका इरादा कुछ भव्य खरीदने का हो और इस प्रयास में आप निरन्तर एक दुकान से दूसरी दुकान तक दौड़घूँप कर रहे हों किन्तु आपकी कल्पना का कुछ मिल न पा रहा हो और आप फिजूल ही दुकानदारों को कोसते हों कि वे कैसे दुकानदार हैं कि ग्राहकों का ख्याल ही नहीं रखते, जो/जैसा चाहिये वह/वैसा मुद्देया नहीं कराते तो ऐसे में आप असहज हैं और वातावरण का वास्तविक मूल्यांकन करने में असमर्थ हैं।

इसी तरह यदि कोई मेहमान आपके बैठकखाने में हो और आप उस पर लगातार अपनी तारीफें थोपते हों कि आपने यह किया है, वह किया है, और आप इस तरह लिख लेते हैं, इस तरह बोल लेते हैं

मन-ही-मन चरण छुए (कन्नड-लावनी)  
—अनु. डी.एफ. दंडिन ७१

बाहुबली (कविता)  
—लक्ष्मीचन्द्र जैन ७३

मैं (कविता)  
—कपूरचन्द्र जैन ७४

'गोम्मट': शब्द-कथा  
—डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये ७५

भगवान् बाहुबली अर्थात् क्षमा,  
शान्ति, समता, एकता (बातचीत-२)

—चारुकीर्ति भ. स्वामी ८७  
हमारा कर्तव्य : दूसरों की सुविधा  
(बातचीत-३)

—साहू श्रेयांसप्रसाद जैन ९१  
श्वेताम्बर-साहित्य में भरत-बाहुबली  
—अगरचन्द्र नाहटा ९८

यात्री-शब्द-कोश १०१

समाचार-परिशिष्ट १०५

पत्रांश (संदर्भणमोकार-विशेषांक-१) १०७  
अक्षरदेह-आवरण-४

कि लोग तालियों की गगनभेदी गड़गड़ाहट से आपका स्वागत करते हैं। . . . और जब आप बोलते हैं तब 'पिन-ड्रॉप-सायलेन्स' रहती है तथा लोग 'एक बार और, एक बार और' पुकार कर रह जाते हैं और आप हैं कि उनकी पुकार नहीं सुनते और एक प्यास छोड़ते हैं, तो आपका इस तरह पेश आना असहज होना है।

यानी जब आप जितने हैं, उससे अधिक बनते या बताते हैं, तब असहज होते हैं, और जब आप जितने हैं अधिकतम उतना अथवा उससे कम या बिलकुल नहीं बनते/बताते हैं, दूसरे की सुनते हैं, तब आप सहज होते हैं।

सहजता आत्मविकास की माता है जिसके आँचल-तले निरापद रहा जा सकता है। □



संपादकीय

१०००

शुभ्र-श्वेत सरोवर के ग्राम में नौ सौ इक्यासी ईस्वी के बाद फिर एक ऐसा सूर्योदय होने को है जो देखेगा गोम्मटेश्वर का हज़ारवाँ मस्तकाभिषेक। तब उसे चामुण्डराय और गुल्लिकाअज्जी ने संपन्न किया था, आज मुनि श्री विद्यानन्दजी की प्रेरणा से सारे देश के कोटि-कोटि हाथ उसे संपन्न करने जा रहे हैं।

एक जनमंगल महाकलश चला, सारे देश में धूमा, और उससे संपूर्ण राष्ट्र की लोक-चेतना जुड़ी। यह कलश लोकसंग्रह का प्रतीक है, इस संकल्प का कि श्रवणबेलगोळ से सारे देश को एक ऐसी अहिंसक/सत्यसंध जीवनशैली मिलेगी जो उसके संतप्त मन पर चन्दन का काम करेगी और उसके समकालीन तनाव को कम करेगी। हमें विश्वास है कि उत्सवी कोलाहल के बाद एक शब्द जियेगा—'सेवा' और वह सारे मुल्क में ही नहीं विश्व में पूरे बल से व्याप्त होगा/हो सकेगा; चहरदीवारी में नहीं मैदान में अर्थात् जैन-जैन में नहीं, जन-जन में।

आज से १००० साल पहले विन्ध्यगिरि मात्र एक मामूली पहाड़ था, किन्तु चामुण्ड-राय जैसे संकल्प और शक्ति, श्रुत और शील के धनी ने उसे अप्रतिम व्यक्तित्व प्रदान किया और आज वह विश्वविश्रुत है, लाख-लाख लोगों की नेत्र-सम्पदा। निःसंदेह दक्षिण ने उत्तर को 'अनुत्तर' कुछ दिया है, और दोनों हाथों से उलीच-

गोम्मटेश्वर/५

कर उन्मुक्त दिया है; धवला-महाधवला और गोम्मटेश्वर इसके जीते जागते उदाहरण हैं। जहाँ तक कला/शिल्प का संबन्ध है दक्षिण अद्वितीय है, वह उसकी अखूट खान है। श्रवणबेळगोळ तो सिरमौर है : अविस्मरणीय/नयानाभिराम। गोम्मटेश्वर की विशाल मूर्ति परम तप की जीवन्त प्रतीक तो है ही, ज्ञान और दृढ़ संकल्प की द्योतक भी है। श्रामण्य, श्रम और नारी-गरिमा की प्रतिनिधि भी वह है।

भारत में ऐसे स्थान बहुत कम हैं; जहाँ शक्ति, सौंदर्य, शील; श्रामण्य, श्रम, श्रुत का इतना संतुलित समन्वय प्रकट हुआ हो।

चामुण्डराय शक्ति, अरिष्टनेमि सौंदर्य और माँ काळळदेवी शील की जीती-जागती गौरवगाथाएँ हैं। उधर गुल्लिकाअज्जी श्रम, भ. बाहुबली श्रामण्य और आचार्य नेमिचन्द्र श्रुत के जीवन्त प्रतीक हैं। ऐसी कोई प्रतिमा देखने में नहीं आयी जिसके साथ नर-नारी दोनों की गरिमा इतने वैभव के साथ जुड़ी हो। भगवान् बाहुबली जहाँ एक ओर शक्ति/स्वस्तिक के प्रतिरूप हैं वहीं इस तथ्य के भी उद्घोष हैं कि नारी की शक्ति महान् है और हम कहीं भी उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। भ. बाहुबली को निःशल्य करने में ब्राह्मी और सुन्दरी, गोम्मटेश्वर की विशाल प्रतिमा की निर्मित में काळळदेवी, अरिष्टनेमि के स्थितिकरण में उसकी पूज्या माँ; प्रथम मस्तकाभिषेक की सफलता में गुल्लिकाअज्जी की भूमिकाएँ हम कभी विस्मृत नहीं कर सकते। इस तरह संपूर्ण मानवता श्रवणबेळगोळ की धरती से वगैर किसी भेदभाव के बद्धमूल है।

हम उन क्षणों की तो कल्पना ही नहीं कर सकते जब अरिष्टनेमि ने विन्ध्यगिरि के सर्वोच्च शिखर पर अपना पहला सुकोमल छैनी-प्रहार किया होगा और उसके उस शिल्प-संगीत से सारी दिशाएँ गूँज उठी होंगी; महान् रहा होगा वह पल !! क्योंकि फिर तो उसके वाद छैनियाँ धारासर चली होंगी और विन्ध्यगिरि, समूचा पर्वत जीवन्त हो उठा होगा। कितना श्रम लगा होगा, कितनी जनशक्ति खपी होगी अर्हनिश; कौन जाने! आज तो वह सब हमारे लिए कल्पनातीत है। मानव-श्रम और मानव की सौंदर्यानुभूति का वह परिणय-क्षण हम शायद कभी भुला नहीं पायेंगे। जैनाध्यात्म को शक्ति, सौंदर्य, शील; श्रम, श्रामण्य, श्रुत के साथ बद्धमूल रखने का यह ऐतिहासिक कार्य जब भी घटित हुआ स्तब्ध रह गया होगा तब लोकोलोक; झनझना उठा होगा दिग्दिगन्त एक अभिनव संगीत में।

१००० वर्ष पूर्व का हिन्दुस्तान शान्त नहीं था। युद्ध जूझे जा रहे थे और सांस्कृतिक सब कुछ मिट रहा था, वह सब जिसे हमने सदियों की साधना से अर्जित किया था, संमूर्तित किया था। जन-जन आत्मरक्षा में लगा था। ऐसे सामुदायिक क्लेश में भी दक्षिण अहिंसक जीवन-शैली का प्रमुख केन्द्र था और पूरी ताकत से देश की कला-विरासत को सहेज रहा था।

भक्ति दक्षिण से उत्तर की ओर आयी, यह एक जाना-माना तथ्य है। कहा जाता है "भक्ति द्राविड़ ऊपजी" यानी भक्ति का जन्म द्राविड़ देश में हुआ। वहाँ से

उसकी धारा गंगा-यमुना की ओर दौड़ी और उसने उत्तर के संताप को कम किया; क्या गुल्लिकाअज्जी उस भक्ति-चेतना के परम वैभव की प्रतीक नहीं हैं? विन्ध्य-गिरि पर गुल्लिका-अज्जी की प्रतिमा, उसकी मधुराई, स्निग्धता और शिल्प देख कर कौन मुग्ध नहीं होगा? भलों, जिसका समूचा मन महाभिषेक की पुलक में डूबा हो और जो अकिंचन होते हुए भी किसी महान् विभूति के अभिषेक की कल्पना में पल-पल सुलगी हो, उसके अन्तस् वैभव का कोई सानी है!!

गुल्लिकाअज्जी कोई हाड़-मांस की नारी रही होगी, किन्तु हम सबके लिए परम सौभाग्यशालिनी वह भक्ति-भावना की जीती-जागती मूरत है, जो आज से पूरे एक हज़ार साल पहले श्रवणबेळगोळ की पुण्यशालिनी धरती पर चली थी और जिसके चरणों में नेमिचन्द्राचार्य-जैसे महामनीषी का ज्ञान तथा वीर-मार्तण्ड चामुण्डराय का अप्रतिम शौर्य एकबारगी ही अकिंचन हुआ था। वह धन्य और सफल ही तब हुआ जब उसने सम्मानित किया उसे जो गुल्लिकाअज्जी के रूप में प्रकट हुआ था। जन-श्रुतियों में मिलता है कि महाभिषेक के बाद फिर कभी गुल्लिकाअज्जी को नहीं देखा गया; सहज ही आज यह सवाल उठता है कि क्या हम इस हज़ारवें महा-मस्तकाभिषेक के गर्वीले क्षणों में किसी गुल्लिकाअज्जी या नेमिचन्द्राचार्य को वह प्रतिष्ठा दे पायेंगे और गोम्मटेश्वर के मस्तक पर पहली अभिषेक-धारा किसी धन-वैभव की न हो कर, भक्ति श्रम, और श्रुत की होंगी? सामने वह धार चाहें न भी दिखायी दे किन्तु देश के कोने-कोने से श्रुत/श्रम-धाराएँ चुप-चुप पहले ही गोम्मटेश्वर पर उतर चुकी हैं/उतर रही हैं।

परम तपोधन एलाचार्य मुनि विद्यानन्दजी इस समय आचार्य नेमिचन्द्र की आसन्दी पर हैं और चारुकीर्तिजी में अरिष्टनेमि की जीवन्त वापसी हुई है, उस अरिष्टनेमि की जो शिल्प की चरम सफलता के बाद सेवा का दृढ़ संकल्प लेकर अनावृत्त हुआ है। यह अन्धा कथन नहीं है, एक ऐतिहासिक तथ्य है जिसे उत्तरोत्तर आकार लेते देखा जा सकेगा। चारुकीर्तिजी ने धन के आकिंचन्य और सेवा के गौरव को भली-भाँति समझा है, यही कारण है कि उन्होंने नेत्रशिविर के रूप में श्रवणबेळगोळ की कई गुल्लिकाअज्जियों को महामस्तकाभिषेक देखने का अवसर प्रदान किया है और कई ग्रामवासियों की आँखों में उस रोगिणी को लौटाया है जो इस सारे दृश्य को देखकर विभोर होगी, नाच उठेगी। हम मानते हैं यह महोत्सव उनके सेवा-संकल्प का 'अ' है, 'ह' नहीं है; और फिर यह सूत्रपात यहीं रुका नहीं रहेगा, इसके सूत्र यहाँ से आगे बढ़ कर सारे देश को प्रभावित करेंगे। आज जनसेवा सर्वत्र प्रदर्शन है, लेकिन हमें विश्वास है उक्त उत्सव के बाद इसे एक नया रूप मिलेगा और यह आदमी के दुःखों को कम करने में पूरी शक्ति से जुट जाएगी। संभव है राजनीति को भी इस उत्सव में से सेवा तथा प्रेम, शान्ति और सत्य की कोई अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो और गांधी दिल्ली और अन्य प्रान्तीय राजधानियों में फिर जीना शुरू कर दे।

यह तय है कि उत्सव की चहल-पहल और कोलाहल जल्दी ही शान्त हो जाएँगे और सब अपनी सामान्य दिनचर्या में लौट आयेंगे, किन्तु श्रवणबेळगोळ से जो पूंजी अपनी गाँठ में ले जाएँगे वह होगी बाहुबली-कथा।

बाहुबली कौन थे, भरत कौन थे, उन्होंने क्या-क्या किया, दोनों में युद्ध क्यों नहीं हुआ और यदि हुआ भी तो वह व्यक्तियों तक ही सीमित क्यों रहा—जनता में क्यों नहीं फैला या फैलाया गया, ऐसे व्यक्तिगत युद्धों के बाद भी दोनों आत्मोन्नयन की दिशा में आगे बढ़ते गये—कैसे, मानवीय दुर्बलताओं के होते हुए भी आत्मा की शक्तियों को कैसे उधाड़ा जा सकता है, बाहुबली और भरत ने ऐसी शक्तियों को कैसे उधाड़ा, सांसारिकता क्षणभंगुर है—आत्मा की स्वाभाविकता को ढंकती है, अतः क्या इसे लेकर लड़ा जाना चाहिए; राचमल्ल के सेनापति वीर-मार्तण्ड चामुण्डराय ने बाहुबली की इस विशाल प्रतिमा का निर्माण क्यों कराया, कैसे कराया, इसे किस शिल्पी ने कब बनाया, अभिषेक की धारा चरणमूल तक क्यों नहीं पहुँची, गुल्लिका-अज्जी कौन थी, उसकी गुल्लिका में इतना जल कहाँ से आ गया जो १००८ कलशों का मुकाबला कर सका, क्या आध्यात्मिक सूक्ष्मताओं में धन-वैभव की स्थूलताओं से अधिक शक्ति है, माता काळळदेवी कौन थी, उसने क्या संकल्प किया था, उस संकल्प का क्या परिणाम हुआ, जब सारे भारत में युद्ध-विघटन चल रहे थे तब एक सेनापति ने इस तरह की सुकुमार कल्पना क्यों की, उसने एक अज्ञाने पहाड़ पर वैराग्य और वीतरागता को अंकित करने की योजना क्यों बनायी, इत्यादि ऐसे प्रश्न हैं जो बाहुबली-कथा से सीधे जुड़े हुए हैं और जीवन को उज्ज्वलताओं की ओर मोड़ते हैं।

सेनाध्यक्ष चामुण्डराय पराक्रमी था, लेखक था, कवि था, दार्शनिक था, मातृ/राज भक्त था, सौंदर्यान्वेषी था, कला और शिल्प का सम्मान करता था, कला को परखने की उसकी अपनी निर्मम कसौटियाँ थीं, वह प्रायः मामूल से संतुष्ट नहीं हो पाता था, उसकी दृष्टि पारगामिनी थी, वह चेतना के आरपार देखने का सामर्थ्य रखता था, अजितसेन/नेमिचन्द्राचार्य-जैसे महामनीषी उसके अध्यापक थे, वस्तुतः वह लौहपुरुष था—विन्ध्यगिरि की भाँति अविचल और बाहुबली की भाँति सुदृढ़। उसने वह सब पूरा किया जिसकी योजना उसने की; वह विनम्र भी इस हद तक था कि उसने निःसंकोच श्रम के पादमूल में अपना मत्था टेक दिया। . . . . . १००० साल पहले जब यह मूर्ति बनी थी और पहली जलधार गोम्मटेश के मस्तक पर छूटी थी तब गणनभेदी घोष सुनायी दिये थे; आज हमें जो सुनायी देगा उसके माध्यम से ही हम उन स्वर्णक्षणों की कल्पना कर पायेंगे, किन्तु निश्चय ही वे क्षण अभूतपूर्व रहे होंगे!!! क्या ऐसे इन क्षणों में हम काळळदेवी के सारे स्वप्न/आचार्य नेमिचन्द्र की समय मनीषा एलाचार्य मुनि विद्यानन्दजी की आँखों में टटोल सकते हैं? क्या अरिष्टनेमि की भेदविज्ञानी / सम्यक्त्वखोजी छैनी को किसी पिच्छी-कमण्डलु में तलाश कर सकते हैं? क्या हम इस कोलाहली महोत्सव को एक सूक्ष्म/प्रखर/प्रभावी आकृति प्रदान कर सकते हैं? कर सकते हैं बशर्तें द्रविड़ देश पुनः १००० साल पहले की सुजनोन्मुख मुद्रा में लौटे और उत्तर पुनः उस सबको पाने के लिए उत्कण्ठित हो और अपनी झोली को उदारतापूर्वक खोले/खुला रखे; हमें, इस सबकी उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा करनी चाहिये। □

## निष्काम सेवा : इधर बीज, उधर फल

डॉ. नेमीचन्द जैन : महाराजश्री, मैं आपसे पूछना चाहता हूँ, भारत का एक बहुत बड़ा आयोजन यहाँ (श्रवणबेलगोल में) होने जा रहा है महामस्तकाभिषेक का एक हजार वर्ष बाद, तो इसकी फलश्रुति क्या होगी ? क्या इन सारी शक्तियों का, इन सारी प्रवृत्तियों का रूपान्तर सेवा में किया जा सकेगा ?

एलाचार्य मुनि विद्यानन्द : देखिये, इस महामस्तकाभिषेक से एक तो लोगों में धार्मिक जाग्रति होगी दूसरे यहाँ की कमेटी ने जनसेवा की भावना से कुछ कार्यक्रम शुरू किये हैं । उनमें पहला कार्य चार सौ आदमियों की आँखों का ऑपरेशन था । जो असमर्थ लोग हैं, उनकी आँखों का ऑपरेशन कमेटी ने स्वेच्छा से धन खर्च करके करवा दिया । यह लोकोपकार का काम है । हमारे यहाँ सामायिक पाठ में श्रमण संस्कृति के अमर गायक आचार्य अमितगति ने क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं सुन्दर सूत्र प्रस्तुत किया, जिसे हम केवल मन्दिर में बैठकर बोलते हैं, प्रार्थना-सभाओं में बोलते हैं, पूजापाठ में बोलते हैं या एकान्त में बोलते हैं; परन्तु वह प्रेक्टिकल नहीं है । वास्तव में ऐसे महोत्सव के अवसर पर जनकल्याण की भावना से - गरीबों के दुःख दूर करने की भावना से यहाँ (इस क्षेत्र में) क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं को सही मायने में प्रेक्टिकल रूप दिया जा रहा है; इस सूत्र के अनुरूप कार्य किया जा रहा है । इससे लोग बहुत खुश हैं । चार सौ लोगों की आँखों का ऑपरेशन होने से उन्हें रोशनी मिल गयी/रोशनी आ गयी, जिससे वे लोग भी अभिषेक देख सकेंगे ।

ने. : उसमें से कोई ऑपरेशन असफल तो नहीं हुआ ?

वि. : उसमें से एक भी असफल नहीं हुआ, यह बड़े आश्चर्य की बात है ।

ने. : सब को रोशनी मिल गयी ?

वि. : हाँ, सब को रोशनी मिल गयी । वे गद्गदित हो गये । मैं वहाँ अन्तिम दिन गया था, जब वे सब लोग चश्मा लेकर अपने-अपने घर जाने की तैयारी में थे । उनकी आँखों में आँसू आ गये और वे उल्लसित हो गये कि हम भी गोम्मटेश्वर का अभिषेक देख सकेंगे । भगवान् गोम्मटेश्वर की कृपा से हमारी आँखों में रोशनी आ गयी, ऐसी उनमें श्रद्धा भी जाग्रत हो गयी ।

ने. : 'क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं' आपने सुनाया । अब तो यह सूत्र मैदान में आ रहा है । इसका मैदानी रूप क्या होगा ?

वि. : मैदानी रूप तो इस सूत्र का अब यहाँ प्रकट हो रहा है, जैसे भारत रेडिएटर्सवाले यहाँ गरीबों के घरों के सामने नारियल के पेड़ लगवा रहे हैं; कुछ दिल्लीवालों की तरफ से सिलाई की मशीन मिल रही है। आसामवालों ने यहाँ एक आयुर्वेदिक औषधालय भी खोला है, जिसका उपयोग जो गरीब हैं, उनमें जो असमर्थ हैं, वे कर रहे हैं। प्रत्येक दिन तीन-चार सौ लबेगों का पहली बार यहाँ उपचार हो रहा है। यह लोककल्याणकारी कार्य है। आहारदान, औषधदान, ज्ञानदान, अभयदान में औषधदान का अपना महत्त्व है ही। लोकोपकार की भावना से यह सेवा-कार्य हो रहा है।

ने. : नारियल तो बड़ा मंगल का प्रतीक है।

वि. : नारियल मंगल का प्रतीक तो है ही। एक नारियल के पेड़ में साल-भर में कम-से-कम पाँच सौ से एक हजार रुपये का लाभ हो सकता है।

ने. : कितने समय के बाद नारियल के लगाने से यह लाभ मिलता है ?

वि. : नारियल का पेड़ लगाने के पाँच-सात साल बाद उसमें फल लगने लगते हैं।

ने. : इसके पेड़ की परवरिश में कोई खास श्रम करना पड़ता है ?

वि. : इसमें कोई श्रम भी नहीं है। थोड़ा-सा नारियल के पेड़ को बचाने के लिए कोशिश करते हैं फिर तो वह बढ़ने लगता है। इस प्रकार लोग यहाँ बहुत-से लोकोपकार के काम कर रहे हैं। यहाँ आकर स्वयं की प्रेरणा से रानी मिलवाले शिखरचन्दजी (मेरठ) लोगों को चढ़ने में दिक्कत न हो, इसलिए सीढ़ियाँ बनवा रहे हैं।

ने. : इसमें सेवा का कोई वृक्ष है ?

वि. : सेवा का वृक्ष तो आदमी स्वयं है। आदमी स्वयं की सेवा करे और दूसरे के लिए उपकारक सिद्ध हो। आदमी जीवित सेवा का वृक्ष है।

ने. : मनुष्य के लिए सेवा का क्या स्वरूप हो सकता है ?

वि. : जो सेवा कर रहे हैं, उनको देखकर प्रेरणा ले, अपने पास जो भी तन-मन-धन की शक्ति है, उसके अनुरूप दूसरों की सेवा में अपना थोड़ा-सा समय लगाये। इससे समाज में, राष्ट्र में जो लोग नाना तरह से दुःखी हैं, उनके दुःख दूर हो सकते हैं और यह भी अहिंसा का अंग हो सकता है।

ने. : हम स्वयंसेवक नाम रखते हैं। स्वयंसेवक तो स्वयं की सेवा ही करेगा और क्या करेगा ?

वि. : स्वयंसेवक स्वयं की सेवा तो करे ही, साथ ही दूसरों की सेवा भी करे ।

ने. : स्वयंसेवक दूसरों की सेवा क्या करे और कैसे करे ?

वि. : दूसरों की सेवा तो अनेक रूप से की जा सकती है । उनके दुःख-दर्द में सम्मिलित हो सकते हैं, उनको सांत्वना दी जा सकती है । उनकी मानसिक व्यथा भी दूर की जा सकती है । उनकी आर्थिक मदद भी की जा सकती है । स्कूल-कॉलेजों में पढ़ने वाले बच्चों को/विद्यार्थियों को किताबें या उनके लिए आवश्यक/उपयोगी अन्य चीजें दी जा सकती हैं ।



ने. : इस समारोह के समय स्वयंसेवक का दृष्टिकोण क्या होना चाहिये ?

वि. : समारोह में स्वयंसेवक दूसरों की सेवा करने की भावना रखते हुए स्वयं की सेवा कर लें, किसी को तकलीफ न हो, दूसरे को अधिक-से-अधिक सुविधा मिल सके, ऐसी भावना/दृष्टि रखने से यहाँ की बहुत-सी समस्याएँ आसानी से अपने-आप ही दूर हो सकती हैं ।

ने. : इतने सारे कार्यकर्ता यहाँ रहेंगे, महाराजश्री, उनके लिए कोई सन्देश दीजिये ।

वि. : कार्यकर्ताओं को एक ही सन्देश है कि वे यहाँ से ऐसा कोई संकल्प लेकर जाएँ, जो वे जीवन-भर निभा सकते हों, जो राष्ट्र के हित के हों, या समाज के लिए कल्याणकारी हो या व्यक्तिगत जीवन के विकास के लिए हो ।

ने. : जब कार्यकर्ता कार्य में लगा हुआ हो, उस समय उसके लिए क्या सन्देश है ?

वि. : उस समय के सन्देश के लिए यही बता सकता हूँ कि वह किसी भी परिस्थिति में नैतिकता पर अडिग रहे; किसी भी प्रकार अपनी नैतिकता पर आँच न आने दे ।

ने. : कोई बालक गुम जाए, उसे ढूँढ़कर यथास्थान पहुँचा दे, कोई मार्ग भटक गया हो, तो उसे भी अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचाने में मदद दे । इस प्रकार के तात्कालिक सेवा के काम वह कर सकता है ।

वि. : हाँ, इस प्रकार के सेवा-कार्य तो उसे करना ही चाहिये ।

ने. : हिमालय-यात्रा के दौरान रुद्रप्रयाग में होने वाले संस्मरण को कृपया सुनाइये ?

वि. : सन् १९७० के मई महीने में हम हिमालय की यात्रा करने जा रहे थे । रुद्रप्रयाग में ठहरने के लिए एक दुमंजिला बिल्डिंग को किराये पर लिया गया था । हम लोग वहाँ ठहरे थे, अचानक ही हिमालय बद्दीनाथ से जो यात्री उतर कर आये थे, शाम को सूर्यास्त होते-होते वारिश शुरू हो गयी, बर्फ भी पड़ने लगी । वे यात्री बहुत घबरा गये । अंधेरा होने से वारिश के कारण वे भींग भी गये थे; उनकी गाड़ियाँ आगे नहीं जा सकती थीं । उन्हें ठहरने के लिए कोई स्थान नहीं दीख रहा था । मैंने यह दृश्य खिड़की से देखा, तो अपने कार्यकर्ताओं से कहा कि हम लोग छोटी-सी जगह में रहने के लिए चलें और यह बिल्डिंग खाली कर दें । जो दुःखी हैं, कष्ट में/तकलीफ में फँस गये हैं, उनके लिए हमें ऐसा करना चाहिये । उस समय मुझे 'क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्व' का सूत्र याद आने से मैंने उन्हें तत्काल ऐसा करने के लिए कहा ।

ने. : उन यात्रियों को कैसा लगा, जब आपने ऐसा कहा ?

वि. : उन यात्रियों को तो मालूम नहीं हुआ, मैंने उस भवन के मैनेजर को ही केवल कहा था ।

ने. : क्या आपने तत्काल भवन खाली कर दिया ?

वि. : उसी समय खाली कर दिया । हमारे लोगों को बुरा नहीं लगा । हमें तो रात में सोना ही था । यह कहना चाहिये कि हमारे लोग बड़े प्रसन्न हुए । ऐसे समय दूसरों को दुःखी देखकर उनकी तकलीफ को दूर करने की भावना अवश्य उत्पन्न हुई ।

ने. : आपको असुविधा हुई ?

वि. : मुझे कोई असुविधा नहीं हुई । असुविधा होने का कोई कारण भी नहीं था । मुझे तो जंगलों में, झोंपड़ियों में, पेड़ों के नीचे भी ठहरना होता है ।

ने. : दिगम्बर मुनि आप जो हैं ?

वि. : कर्तव्य भी है । मुझे कोई असुविधा नहीं हुई, न कभी कोई असुविधा होती है । उसके बाद अकस्मात् जब हम यात्रा करते हुए हनुमान टेकरी पहुँचे, तो वहाँ ठहरने के लिए कोई जगह ही नहीं थी । हममें से किसी ने कुछ नहीं कहा, लेकिन इतने में पुलिसवाले पुलिस-चौकी खाली करके बाहर सो गये और हमें वहाँ ठहरने के लिए जगह दे दी । मेरे मन में उस समय यह विचार आया कि रुद्रप्रयाग में

लोगों को दुःखी देखकर जगह खाली कर दी थी या करवा दी थी, उसी काति-प्र फल यहाँ मिला कि ठहरने की जगह न होने पर भी अपने आप ही पुलिस-चौकी में जगह दे दी। वास्तव में सेवा का फल तत्काल मिलता है। सेवा तो एक धर्म है, कर्तव्य-कर्म है।

ने. : सेवा का बीज बोया और सेवा का फल आया।

वि. : हाँ, तत्काल चार दिनों के बाद ही। सेवा का कार्य तो करते रहना चाहिये, क्योंकि जब तक जीवित रहना है लोक-व्यवहार और सेवाभाव को हम छोड़ नहीं सकते। मैं तो इसे अहिंसा का ही अंग समझता हूँ। दूसरे की सेवा न करना; दुःखी देखकर उसे दुःखी रहने देना यह तो एक तरह से हिंसा है। अहिंसा इतनी व्यापक है कि वह चौदह राजू प्रमाण व्याप्त है, अपने किसी भी व्रत में दोष न आते हुए कोई भी लोकोपकारी कार्य को सेवाभाव से मन-वचन-काम से करते रहना चाहिये।

ने. : आपने यह तो पहाड़ का अनुभव सुनाया। कृपया कोई मैदानी संस्मरण भी सुनाइये।

वि. : यात्रा करते हुए हम राजस्थान के एक गाँव में गये। हमारे साथ ४०-५० आदमी थे। एक विधवा स्त्री थी, वह रोज ही कहीं काम पर जाती थी। जब उसने देखा कि यहाँ गाँव में इतने सारे लोग आये हैं, गरमी के दिन हैं। महात्माजी के साथ आये हैं। मैं क्यों नहीं इन्हें अपने हाथ से कुए का पानी लाकर पिलाऊँ ? उस विधवा स्त्री के मन में ऐसी भावना उत्पन्न हुई। वह खुद तो अपने काम पर नहीं गयी, उसने उसके बदले अपने बेटे या बेंटी को भेज दिया। वह ब्राह्मणी बाई खुद ही कुए से पानी छानकर लायी और दिन-भर पानी पिलाने के साथ अन्य कार्य करती रही। उसके मन में कोई स्वार्थ या मतलब था, ऐसा नहीं दीख पड़ा। यात्रियों ने उस विधवा की ऐसी सेवा को देखकर कुछ आर्थिक मदद अवश्य की। सेवा की भावना सहज ही, स्वयंस्फूर्त होती है, तभी वह सार्थक होती है।

ने. : क्या ईसाई जो सेवा करते हैं, उस तरह की सेवा करना चाहिये ?

वि. : ईसाइयों के यहाँ तो सेवा की विधिवत् ट्रेनिंग दी जाती है। उसका सुव्यवस्थित प्रशिक्षण दिया जाता है। वास्तव में हमारे यहाँ ट्रेनिंग ही नहीं दी जाती है, लेकिन लोगों में सेवा की भावना अवश्य है। उस भावना को जाग्रत करना बहुत जरूरी है। यदि हम इस भावना को जाग्रत करेंगे, तो उसका परस्पर लाभ मिलेगा। समाज में/राष्ट्र में जो परस्पर व्यर्थ का दंभ उत्पन्न होता है, वह

सेवा की भावना से दूर हो सकता है। परस्पर सांत्वना भी मिलेगी। एक-दूसरे के उपकार के लिए मुझे 'क्लिंटेष्टु जीवेषु कृपा परत्वं' का सूत्र बार-बार याद आता है। इस सूत्र के अनुरूप हमें अपने समाज में सेवा की भावना जाग्रत करना चाहिये, जिससे नयी पीढ़ी भी चौबीस घण्टों में से थोड़ा समय सेवा के कार्यों में लग सके। हमें नयी पीढ़ी के लोगों में ऐसी भावना उत्पन्न करना आवश्यक है। हमें सब की कर्तव्य-कर्म समझ कर प्रसन्नतापूर्वक सेवा करना चाहिये।

ने: अन्तिम बात आप से पूछ रहा हूँ महाराजश्री, आपने सेवा की ट्रेनिंग की जो बात कही, तो सेवा की ट्रेनिंग क्या हो सकती है ?

बि.: सेवा की भावना तो सब में है। विधिवत् सेवा का आज बहुत महत्त्व है। यह इसके लिए ट्रेनिंग (प्रशिक्षण) जरूरी है। दूसरे के दु:ख को/तकलीफ को देखकर दु:खी हो जाना ही काफी नहीं है, उसे दूर करने के लिए सक्रिय होना आवश्यक है। ट्रेनिंग के बिना किसी की तकलीफ/दु:ख को दूर करने में/करवाने में कठिनाई होती है और देर भी लगती है। सेवा का विधिवत् ज्ञान बहुत लाभदायक हो सकता है, इसलिए मैंने ट्रेनिंग (प्रशिक्षण) की बात कही है।

ने.: ट्रेनिंग (प्रशिक्षण) के लिए संस्कार होते हैं।

बि.: घर/परिवार में माँ-बाप अपने बच्चों को सेवा की विधिवत् ट्रेनिंग दे सकते हैं, जिससे बहुत लाभ हो सकता है।

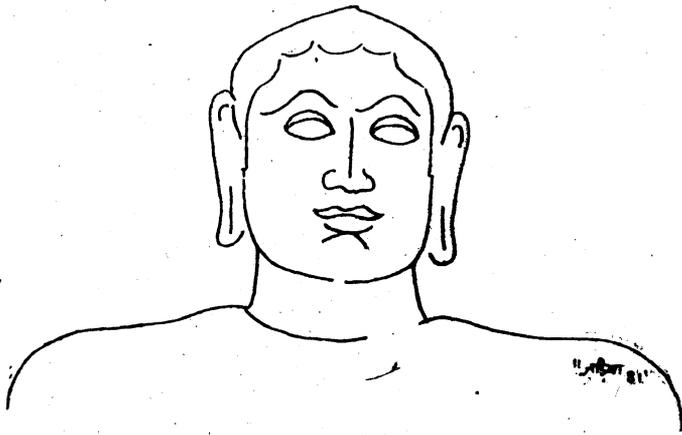
ने.: क्या आप यहाँ आने वाले लम्बों यात्रियों को और कोई सन्देश देना चाहते हैं ? मैं पत्रकार की हैसियत से उसे उन तक पहुँचाने का प्रयत्न करूँगा।

बि.: महामंस्तकाभिषेक में आने वाले यात्रियों को यही सन्देश है कि वे यहाँ अनुशासनबद्ध रहें। कहीं से भी भगवान् बाहुबली की मूर्ति दिखायी दे, वहीं से अभिषेक देखें, वहीं से उन्हें प्रणाम करें। अपने लिए अधिक सुविधा जुटाने के कारण दूसरों को तकलीफ न दें। परस्पर सहानुभूति रखें। एक-दूसरे की सहायता की भावना अवश्य ही रखें। सब की यात्रा सफल हो, इसलिए परस्पर सहयोग की भावना और सेवा की भावना भी रखें। यहाँ से ऐसी श्रद्धा के साथ धार्मिक भावना लेकर जाएँ, जिससे जीवन में शान्ति का मार्ग बने। ऐसा करने से ही यात्रा सार्थक होगी और सफल रहेगी।

ने.: महाराजश्री, मैं आपको पुनः प्रणाम करता हूँ।

बि.: आशीर्वाद देता हूँ आपको। □

(श्रवणबेलगोत्र, १४ जनवरी, १९६१)



## प्रणाम !! भेद-विज्ञान के सूर्य-पुरुष !!!

जिस प्रकार मलिन स्वर्ण भी अग्नि द्वारा संस्कारित होकर भीतर-बाहर दोनों ही प्रकार के मलों से मुक्त हो जाता है, ठीक उसी प्रकार यह जीव ध्यान द्वारा शरीर और कर्मबन्ध दोनों से रहित होकर सिद्ध हो जाता है ।

क्रोध चार प्रकार का होता है : पत्थर-रेख, पृथ्वी-रेख, धूलि-रेख, और जल-रेख ।

मान भी चार तरह का होता है : पत्थर-जैसा, अस्थि की भाँति, काठ-समान, बेंत-सदृश ।

माया भी चार किस्म की है : बाँस की जड़-जैसी, मेढे के सींग-जैसी, गोमूत्र-जैसी, खुरपा-जैसी । उक्त भेद वस्तु की कुटिलता पर आधारित हैं ।

लोभ के भी चार प्रकार हैं : क्रिमिराग-सा, चक्रमलोपम, शरीर-मल-जैसा, हल्दी-समान । उक्त भेद रंगों की प्रगाढ़ता पर आधारित हैं ।

अजितवीर्य बाहुबली की विजय-कथा कषायों पर दिग्विजय की परम गौरवमयी गाथा है । जो क्रोध की भेदकता, मान की कटता, माया की कुटिलता और लोभ की प्रगाढ़ता पर अपनी विजय-पताका फहराता है, वह संसार के लिए न केवल प्रेरणा अपितु एक अविचल जीवन्त प्रमाण बन जाता है ।

भगवान् बाहुबली की तपश्चर्या अमोघ-अमरं थी; कौन छू सकता है उन ऊँचाइयों को ? इसलिए भेद-विज्ञान का यह अदम्य आलोक-संपन्न परम पुरुष प्रणम्य है, जिसके चरणों पर कषायें स्वयं नतशील हो गयीं, उसके आगे नमन-प्रणमन के लिए भला अब क्या शेष रह गया है ? □



## अ-युद्ध पुरुष

युद्ध प्रायः होते हैं

अ-युद्ध की ओर कोई नहीं जाता

और फिर युद्ध यदि भीतर हो तो

वह विकास का सूचक हो सकता है

किन्तु जो जंग बाहर छोड़ी गयी है

और जिसमें लाख-लाख स्वाहा होने को हैं

उसे कोई सिर झुकाये कैसे मान सकता है ?

उन दिनों मानव-सभ्यता अपने मुख पर से

अवगुण्ठन उठा रही थी

कर्म-संघर्ष के लिए लोग कमर कस रहे थे कि नाभि कुलकर का उदय हुआ

उन्होंने मानव-सभ्यता का मंगल सूत्रपात किया ।

सारा वातावरण बदल गया ।

श्रम-विभाजन हुआ; और-सारा मानव-समाज एक-दूसरे की मदद में जुट गया ।

खेती, रक्षा, लिखा-पढ़ी, सेवा - सारे काम/कर्त्तव्य बँट गये/बाँट दिये गये ।

विशेषज्ञताएँ बनीं;

मानव-सभ्यता, सभ्यता से संस्कृति की ओर अभिमुख हुई ।

ऐसे में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ का अभ्युदय हुआ ।

वे नाभिनन्दन थे

विकास के नाभीय बिन्दु ।

जैसे नाभि से रक्त-संचार जुड़ा होता है, वैसे ही उनसे सारी मनुजता जुड़ गयी ।

गणित

लिपि

नृत्य

संगीत

सारी कलाएँ आविर्भूत/विकसित हुई ।

भरत प्रथम चक्रवर्ती हुए

ज्येष्ठ वे थे

भरत के अनुज थे बाहुबली

उनकी श्रेष्ठताएँ अलग थीं ।

भरत ने दिग्विजय की,

बाहुबली आत्मबल के प्रतीक बने ।

भरत ने हिंसा का आश्रय भी लिया, किन्तु बाहुबली बाहुबल से बहुत आगे आये ।

उन्होंने

अ-युद्ध का मार्ग आविष्कृत किया ।

वे शान्ति के शिल्पी बने ।

अ-युद्ध यानी अहिंसा ।

बाहुबली ने अहिंसक संस्कृति का सृजन/शिल्पन/प्रवर्तन किया ।

जब देखा भरत की सेनाएँ युद्ध के लिए कूच कर रही हैं तो पोदनपुर के इस राजकुमार ने द्वन्द्व-युद्ध का प्रस्ताव किया ।

राज्य युक्तियों से चलता है

हिंसा/क्रूरता/बर्बरता राज्य नहीं चला सकते ।

बाहुबली विश्व के प्रथम महापुरुष थे, जिन्होंने सार्वजनिक अहिंसा का मंगल पाठ संसार को दिया ।

सार्वजनिक हिंसा के दुष्परिणाम/विषफल उन्होंने जाने;

देखा कि सुहागन की माँग पुँछ रही है

बच्चे अनाथ हो रहे हैं

बीमारियाँ फैल रही हैं

अपंगों/अपाहिजों की आबादी बढ़ रही है

समाज आतंकित/भयभीत है

कलाएँ अवरुद्ध हुई हैं ।

मनुज का एक-दूसरे पर से विश्वास उठ गया है

व्यापार-व्यवसाय ठप्प हुए हैं

कोषागार व्यर्थ ही खाली हुए हैं

गाँव उजड़ गये हैं

मनुष्य कलंकित हुआ है ।

ये सारे दुःस्वप्न बाहुबली के सामने हैं, एक सृजनधर्मी के समक्ष हैं ।

उन्होंने जनता-जनार्दन को युद्ध की भट्टी में झोंकने से इन्कार कर दिया

और मानव-सभ्यता के शैशव में ही स्पष्ट कर दिया कि संघर्ष ज्यादातर वैयक्तिक होते हैं; और फिर उनकी लपटें फैलकर सारे समाज को भस्म कर डालती हैं। बाहुबली ने हिंसा की असंख्य आशंकाओं के बीच अहिंसा का शंखनाद किया। व्यक्ति पर विजय प्राप्त की। विजयोन्माद के आकिंचन्य/और उसकी व्यर्थता को स्पष्ट किया। सिद्ध किया कि अहिंसा जननी है सुख की, शान्ति की, समृद्धि की, बन्धुत्व की। वे प्रथम पुरुष थे जिन्होंने युद्ध से युद्ध किया, अयुद्ध की सत्ता को स्थापित किया। कौन है, जो कहे कि व्यक्तिगत रागद्वेष सार्वजनिक क्षतियों के कारण नहीं बन सकते? लड़ें हम, किन्तु जानें कि लड़ाई आखिर क्यों और किसलिए है? वह आदमी जो लड़ना नहीं चाह रहा है और जिस पर लड़ाई का कारण बिलकुल स्पष्ट नहीं है युद्ध व्यर्थ ही उस पर थोपा जा रहा है/थोपा जाता रहा है। वस्तुतः युद्धों में निरीह/निर्दोष मारे जाते हैं और धूर्त/शैतान बच जाते हैं। बाहुबली ने निरीहों की रक्षा की और अयुद्ध-संस्कृति को जन्म दिया। नमन उस अ-युद्ध मनीषी को !!!

□

बाहुबली-प्रसंग-३



**ज्येष्ठता / श्रेष्ठता**

सूरज निकला ही है  
दिशांगनाओं के ललाट पर रक्ताभ तिलक अभी कुछ  
क्षणों पहले ही लगा है  
कि  
भरत-बाहुबली की सेनाएँ आमने-सामने हो गयी हैं।

१८/तीर्थंकर : फरवरी ८१

तलवारें निकल आयी हैं  
हाथी चिंघाड़ रहे हैं  
अश्व खुन्दी कर रहे हैं  
रथ के पहियों ने गतियाँ भर ली हैं  
योद्धाओं की भौहों तन गयी हैं  
कि

सैनिकों को मन्त्रियों का धीर गंभीर स्वर सुनायी दिया है

तलवारें म्यान में लौटने लगी हैं  
हाथियों ने अनकुश मौन ले लिया है  
अश्वारोहियों ने वल्गाएँ तान ली हैं  
पदाति रुक गये हैं  
रथचक्रों की गतियाँ स्तब्ध हुई हैं  
कवच-बन्ध ढीले कर लिये गये हैं

तब राजे-महाराजे अराजक/निरंकुश नहीं थे

मन्त्री विवेकी थे

सदसद् में भेद करते थे

राजा और राजकीय निर्णयों का वे निष्पक्ष मूल्यांकन और समीक्षण करते थे  
राजा उनका और उनकी मन्त्रणाओं का सन्मान करता था  
गणतन्त्र तब एक प्रशस्त/प्रामाणिक राजव्यवस्था के रूप में विकसित हो गया था

ऐसे में मन्त्रिमण्डल की राय व्यक्त करते हुए महामात्य ने कहा—

“आप दोनों पृथ्वपुत्र हैं  
परम ओपवान् और प्रतापी हैं  
श्रेष्ठ हैं

प्रजाओं का रक्त न बहने दें

उनकी रक्षा करें

उन्हें अभय दें

और द्वन्द्व से, अन्तद्वन्द्व को जीतें, ताकि

प्रजाएँ अविच्छिन्न/शान्त/आश्वस्त रहें और देखें कि राज्य-परम्पराएँ  
व्यक्तिगत नहीं प्रजागत होती हैं;

‘राजा के बाद प्रजा’ का जमाना लद चुका है

अब ‘राजा बाद में, प्रजा पहले’—का ऋषभ-वाक्य ही एकमेव विश्वसनीय  
है, सफल/सार्थक है।

आप दोनों तीन युद्ध करें दृष्टि, जल, मल्ल।”

सहमति में चतुर्दिक् उल्लास का समुद्र उमड़ पड़ा है  
सेनाएँ लौट गयी हैं  
भरत ने बाहुबली को  
बाहुबली ने भरत को  
देखा है।

दूसरा दिन है।  
दृष्टियुद्ध आरम्भ हुआ है  
दोनों भाइयों की आँखें निर्निमेष/अपलक हैं  
भरत ज्येष्ठ हैं, किन्तु क्रुद में छोटे हैं  
बाहुबली अनुज हैं; किन्तु भरे-पूरे, ऊँचे हैं  
उनकी झुकी आँखों के झुकने का कोई प्रश्न ही नहीं है  
वे सहज/स्वाभाविक हैं  
अविचल/अपलक हैं  
भरत की पलकें कम्पित हैं, श्रान्त और विचलित हैं अतः

पराजित हुए हैं  
बाहुबली जीत गये हैं  
पहला अध्याय इस तरह समाप्त हुआ है।  
नाटक का द्वितीय अंक आरम्भ होने को है  
विशाल सरोवर में अनुज-अग्रज उतरे हुए हैं  
तटप्रदेश विशाल जनमेदिनी से खचाखच भरा है  
बाहुबली अपनी बलिष्ठ भुजाओं से जल को आन्दोलित किये हुए हैं  
भरत अपनी ओर प्रेषित उत्तुंग तरंगों को लौटा नहीं पा रहे हैं  
उनके नथुने भर गये हैं, श्वास चढ़ गया है,  
वे हाँफ रहे हैं  
जलयुद्ध दुस्सह हुआ है  
घोषणा हुई है कि इस बार भी विजय पताका बाहुबली के हाथ रही है,  
भरत हार गये।

युद्ध का अन्तिम अध्याय उघड़ रहा है।  
दोनों भाई अखाड़े में हैं।  
जनमेदिनी जयजयकार कर रही है।  
लग रहा है जैसे दो नर-सिंह ही सम्मुख हुए हैं  
दोनों की भुजाएँ युद्ध की प्रतीक्षा कर रही हैं  
युद्ध शुरू हुआ है ····!!!  
बाहुबली ने भरत को ऐसे उठा लिया है, जैसे कोई बालक पाटलपुष्प उठा लेता है।

या जैसे गगनमण्डल में मेघावलियाँ तैरती हैं ।

भरत को यह सब असह्य हुआ है

उन्होंने चक्र का ध्यान किया है

चक्र अमोघ है

वह किसी को क्षमा नहीं करता, किन्तु वह भी

बाहुबली की प्रदक्षिणा, और प्रणाम कर लौट गया है

उसने समर्पण कर दिया है

वह ऐसे ही पराभूत हुआ है जैसे अन्धकार प्रकाश से, असत्य सत्य से और  
हिंसा अहिंसा से हार जाती है ।

इस बीच अजितवीर्य बाहुबली ने अनेक अन्तर्यात्राएँ कर ली हैं  
संसार की असारता ने उनके चरण छू लिये हैं । वह कह रही है -

“प्रभो, आप साक्षात् कामदेव हैं

महान् हैं

यह जगत् भंगुर है;

जो क्षणभंगुर नहीं है, विभो, आप उसे पायें/खोजें

अब उस दिशा में ही अपने पग उठायें ।

यहाँ क्या है जगन्नाथ,

और वहाँ क्या नहीं है जगत्पते !!

छोड़िये इस मकड़जाल को और अमरता का वरण कीजिये ।”

इधर भरत भी शान्त हुए हैं

वे क्षमा के लिए उद्ग्रीव/उत्कण्ठित हैं

लगता है जैसे

क्रोध ने मुनित्व ले लिया है

और प्रतिहिंसा संन्यासिनी हुई है

अनायास ही भीतर-बाहर/यत्र-तत्र-सर्वत्र निर्मल हुआ है

बाहुबली आत्मवैभव पर मुग्ध हैं और इसीलिए अन्दर की ओर निर्निमेष हुए हैं

उनकी आँख विश्व-वैभव से हट गयी है

उनके पग वन की ओर उठ गये हैं

करुणा और क्षमा, समता और मनुजता,

शान्ति और सरलता

उनमें जीवन्त हुए हैं

वे हरख रहे हैं

चूँकि उन्होंने युद्ध के क्षणों में सब कुछ हार दिया है

भरत साश्रु बिलख रहे हैं

उन्होंने क्षमा का मुकुट धारण किया है,

वे करुणा की गोद में जा बैठे हैं ।

इस बीच

आकाश में कहीं

ऋषभ के वरद हाथ बरबस उठे हैं और दोनों के माथे पर चाँद-सूरज से आ गये हैं □



## घटित होना एक भोर का

अजितवीर्य बाहुबली कायोत्सर्ग में खड़े हैं  
घनघोर घटाएँ धिरी हैं  
बिजलियाँ कड़क रही हैं  
अन्धकार गहन है  
बहलीवन का जनविहीन/बियावान प्रदेश है  
वे स्वयं में गहरे/बहुत गहरे उतरे हुए हैं  
देह का कोई भान कहाँ रहा है उन्हें ?  
लग रहा है उन्हें कि वे देह नहीं हैं  
आमूलाग्र विदेह हैं  
देह झूठ है  
विदेह सच है  
मन की सारी चंचलताएँ शान्त हैं  
चित्त की आँख अप्रमत्त खुली है ।  
झड़ने लगी हैं  
प्रकृति उनका अजस्र अभिषेक कर रही है

ध्यान-धरा पर प्रश्न अंकुरित हैं

“कौन हूँ मैं

कहाँ हूँ मैं

क्या हूँ मैं

गन्तव्य क्या है मेरा

क्या है आदि, क्या है अन्त

क्या यही अन्त है

यही आरम्भ है . . . . .”

अन्दर के हर गलियारे से उनकी पहचान हुई है

वहाँ का कोई टापू अजाना उनके लिए नहीं है

जन्मजन्मान्तर के इतिहास-भूगोल बारीकियों में उनके सामने उपस्थित हुए हैं

अभी, यहाँ, इसी क्षण ।

उनसे कुछ भी छुपा कहाँ रह गया है ?

किन्तु

उस दिन भरत से हुआ युद्ध . . . . .

.....यह तप.....यह तपोवन.....

यह दो पगतलियों-जितनी भूमि.....

किसकी है यह ?

कौन है इसका स्वामी ?

भरत की ही तो है यह.....

.....उन्हीं की.....

जो भारताधीश हैं, पृथ्विनाथ हैं, छह खण्डों के प्रभु हैं.....

और मैं.....

अहंकार के ऐरावत पर से उनका मन अभी उतरा नहीं है

चित्त बार-बार अवरोहण पर आकर आरोहण पर पहुँच रहा है

यद्यपि आत्मसंगीत अपनी चरमसीमा पर निनादित है

तथापि

अहंकार का काँटा अभी स्वरभंग किये हुए है

भगवान् ऋषभनाथ के ध्यान में इस स्थिति का अंकन हुआ है

ब्राह्मी और सुन्दरी उनकी सन्निधि में हैं

पिता ने पुत्र को संपूर्ण/सर्वांग व्रती के रूप में देखना चाहा है

व्रती को शल्य कैसी ?

भला काँटा जब तक कोई चुभा होगा तब तक तप निरापद/निष्कण्टक कैसे होगा ?

दोनों बहिर्ने चिन्तित हैं

महीनों से चली आती साधना अभी फलीभूत नहीं हुई है

यह मन का आँगन है

यहाँ सब कुछ सघन, सूक्ष्म और प्रच्छन्न है

देह सूचित करता अवश्य है, किन्तु

उस बेचारे की भी सीमाएँ हैं

इसलिए भीतर जो अनुक्षण घटित है उसे कोई कैसे जाने ?

बहिर्ने खड़ी हैं

भरत भी ।

बहिर्ने कह रही हैं :

“भाई ! तपस्या सचमुच तुम्हारी अद्भुत/अद्वितीय है

भुजंगों ने बाभियाँ बना ली हैं

दीमक ने टीले खड़े कर लिये हैं

पक्षियों ने घोंसले बना लिये हैं

बया, नीलकंठ, श्यामा, दामा, भुजंगा नीड़ बनाये हुए हैं

पपीहे की चोंच उठी हुई है

पर सुनें बन्धु !

माना, हाथी पर चढ़ने का शौक तुम्हें रहा है ;

किन्तु गार्हस्थ्य तुम त्याग चुके हो

जब वह छूटा है तब गजारोहण भी छूटा समझो

हाथी पर से नीचे उतरो बीर !”

बाहुबली ने बहिनों के बोल सुन लिये हैं

उन्होंने श्लेष खोल लिया है

लग रहा है उन्हें कि अहं का वासुकी अभी भी कुण्डली मारे भीतर कहीं बैठा है

सहसा उनमें आर्किचन्य/साम्य/सौम्य/और/मार्दव का महासिन्धु तरंगायित हुआ है

वे आत्मविभोर हुए हैं

ऐसे द्रवीभूत/आलोकपूर्ण क्षणों में उनके भीतर एक भोर घटित हुआ है

उनके लिए सब अपने हुए हैं

अब उनमें कोई अहंकार नहीं है — न तप का, न ज्ञान का

और . . . और उन्होंने कैवल्य की स्वर्णभूमि में पाँव रख दिया है

पिता से पहले वे वहाँ हैं ।

चारों ओर एक नयी ही आभा फैल गयी है

नदियों में

प्रपातों में

झीलों में

झंझाओं में

एक नया ही राग झंकृत हुआ है; वीतराग ।

सब उनकी वन्दना को दौड़ पड़े हैं

शुद्धचेता भरत ने भी उनकी वन्दना की है

वे कह रहे हैं :

“भरत का चक्रवर्तित्व तो आपकी चरणरज भी नहीं है प्रभो !

धन्य है यह तप . . . . .”

और पिता से पहले ही उनके पादपद्म . . . . .

## प्रतीक्षित कल

युद्धस्थल बाहुबली के जयघोषों से गूँज रहा है  
भरत हार गये हैं

किन्तु

बाहुबली की आँखों में एक नया ही संसार/  
साम्राज्य अँगड़ाई ले रहा है

उन्होंने एक ही क्षण में सारा राज्य भरत

की हथेली पर रख दिया है

और स्वयं

निरम्बर

किसी अपराजित संपदा की खोज में निकल पड़े हैं

उनका तन-मन किसी परम उपलब्धि के लिए मचल उठा है

उन्हें एक ही क्षण में भंगुरता/अमरता का सम्यक्बोध हुआ है

उनके पलक-पृष्ठों पर अध्यात्म की एक नयी ही पाण्डुलिपि ने आकार ले  
लिया है

पाँवों में कोई अविचल साधना - अथक/अपराभूत साधना - लिपट गयी है

लौकिक शूरता अलौकिक शौर्य से हार गयी है !!

भरत सोच रहे हैं

कैसा महान् है मेरा अनुज !!

उनके मानस में साम्य, संतुलन, शान्ति, संतोष के अविरल प्रपात खुल गये हैं

वे भी पार्थिवता की व्यर्थता को जानने लगे हैं/जान गये हैं

वैसे उस दिन भी उन्हें एक शूल चुभा था जब वे वृषभाचल पर अपना नाम

उत्कीर्ण करने के लिए कोई स्थान नहीं खोज पाये थे।

बाहुबली के चरण कल की ओर हैं

सम्यक्त्व की कला की ओर वे तेजी से यात्रारत हैं

उन्हें अभिनव कल की उद्ग्रीव प्रतीक्षा है

ऐसे कल की जो किसी कल से कभी हारेगा नहीं

और जिसके गर्भ में सारी सुबहें एक साथ होंगी।

उन्होंने त्याग किया है;

त्याग

सजल मेघ है, उसमें धरा की संपूर्ण उर्वरता स्पन्दित है

इसीलिए

अनुज ने अग्रज की हथेली पर किसी साम्राज्य-लिप्सा को महंदी की तरह

मांड दिया है

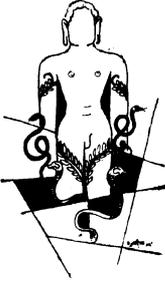
अत्यन्त मुग्धभाव से . . . . .

त्याग यह प्रणम्य है, प्रणम्य है गोम्मटेश्वर !!!

□



## माँ : एक वह / एक में



“... तो यह है मेरी पूज्या माँ का संपूर्ण स्वप्न” – सेनापति चामुण्डराय ने बाहुबली-प्रतिमा के निर्माण की परिकल्पना देते हुए शिल्पी अरिष्टनेमि से कहा। शिल्पी ने सबकुछ तन्मयता से सुना और देखते-देखते उसकी आँखों के सामने एक रम्य कल्पना कौंध गयी। एक भव्य / मनोज्ञ / सुविशाल प्रतिमा आ खड़ी हुई; किन्तु कला के साथ कांचन की लालसा भी उसके तन-मन में भभक उठी। वह बहुरंगी स्वप्नों में डूब गया।

सेनापति ने उसका पार्थिव स्वप्न तोड़ते हुए कहा—“तो बताओ शिल्पी तुम मेरे इस कला-स्वप्न को कितनी अवधि में साकार कर सकोगे ?”

अरिष्टनेमि अवाक् खड़े हैं। द्विविधा में कुछ बोल नहीं पा रहे हैं; किन्तु सेनापति कह रहे हैं—“शिल्पी, सबकुछ जीवन्त हो, जयवन्त हो; लगे कि जैसे पाषाण में किसी ने एक महाकाव्य का सृजन किया है।”

अरिष्टनेमि के मन में लालसाएँ बढ़ने लगीं। मौन तोड़ते हुए चामुण्डराय ने कहा—“तो मान लिया जाए कि तुम्हारी कला मेरे इस कोमल-कठोर स्वप्न को नहीं झेल सकेगी ?”

“नहीं, सो नहीं है सेनापते ! बात दूसरी ही है। मैं सोचता हूँ क्या हम श्रमिकों को इस कार्य के निमित्त भरपूर पारिश्रमिक दे पायेंगे ?” कलाकार ने सक्कुचाते हुए कहा।

“अवश्य” – सेनापति ने अपूर्व दृढ़ता के साथ कहा।

“तो सेनापते ! उस पाषाण को तो हम वक्षस्थल तक उठा लायेंगे; किन्तु उसके बाद जो प्रस्तर-खण्ड/कण गिरेंगे उनकी तोल का स्वर्ण शिल्पियों को देना होगा।” चामुण्डराय ने पुलकित मन से हामी भर दी। □ □ □

पहली खेप की तोल का सोना लिये अरिष्टनेमि अपने गाँव पहुँचा है। माँ अपने लाड़ले की अगवानी के लिए आगे आयी है। उसे स्वर्ण नहीं, बेटा, चाहिये; किन्तु यह क्या; जैसे ही शिल्पी ने माँ के चरण छुए हैं और स्वर्ण का भारा उठाया है उसके दोनों हाथ निर्जीव पड़ गये हैं।

माँ ने इस घटना को तुरन्त समझा है। मातृत्व सारे संसार का एक-जैसा है फिर वह चामुण्ड की माँ का हो या अरिष्टनेमि की माँ का। उसने कहा है—“बेटे, सुनो एक माँ पाषाण की तोल का स्वर्ण दे रही है और दूसरी पाषाण के बदले स्वर्ण ले रही है। बेटे, कला का मूल्य कांचन कभी नहीं है। वह स्वर्ण/संपदा से परे एक अलौकिक तोष है। लोभ नहीं, त्याग में कला है। पाषाण छोड़ता है इसीलिए उसमें से मूर्ति उभरती है।” और यह क्या पलक झपटे अरिष्टनेमि की जकड़न खुल गयी है और वह माँ के पादमूल पर मस्तक रखे कह रहा है—“माँ, शुभाशीष दो मुझे स्वर्ण नहीं श्रेष्ठताएँ/सफलताएँ मिलें।” □



### विजयिनी गुल्लिका/पराजित स्वर्णकलश

शिल्पी अरिष्टनेमि की छैनी चल रही है। वह नासिकाग्र की रचना कर रहा है। इसके बाद वह भगवान् बाहुबली के अर्द्धोन्मीलित नेत्रों पर आयेगा।

ध्यान की इस मुद्रा को

वह बड़े ध्यान से निर्निमेष उकेरेगा,

उसके हाथ में कला सजीव हुई है। उसने पाषाण को बहुआयामिता प्रदान की है। उसे सुध नहीं है।

वह अनवरत/अविराम/अभीक्षण अपनी बहुविध छैनियाँ चुन/बदल रहा है।

उसे नासिकाग्र से चाक्षुष संगति बैठानी है। दोनों अक्षि-कोण नाक की नोक पर सधें ऐसा कुछ वह कर डालना चाहता है।

भगवान् ने भीतर तो दृष्टि को समायोजित कर लिया है, किन्तु शिल्पी के भीतर अभी उसका समायोजन परिपूर्णता के शिखर पर नहीं आया है।

उसकी टाँकी चल रही है, और अब वह क्रमशः सफलता की ओर आने लगा है। उसकी आँखें मुस्करा रही हैं। नथुने थिरक रहे हैं। छैनियों में से एक अपूर्व आध्यात्मिक संगीत बज रहा है। भेद-विज्ञान के सरगम पूरे यौवन पर आ गये हैं। वह विभोर है। उसकी कल्पना जीवन्त हुई है।

वह समाधि के उस शीर्ष पर आ पहुँचा है, जिस पर पहुँचते ही न केवल नासिकाग्र वरन् भगवान् बाहुबली की संपूर्ण जीवन-साधना अपनी तमाम विवृतियों में दिग्म्बर हुई है। छैनी चल रही है। चिनगारियाँ निकल रही हैं। हथौड़ा, कोमलतर हुआ है। उसे सोचना पड़ रहा है कि कहाँ वह कोमल, कोमलतर, कोमलतम प्रहार करे। और अँगुलियों की माँसपेशियों को तो चेतना के उन आदेशों का पालन करना पड़ रहा है जो बाहुबली को उनकी समग्रता में उस पाषाण-खण्ड को सौंप देना चाहती है।

अँगुलियाँ भक्ति-स्निहल हैं और मीरा-सी गा रही हैं ऐसे पद, जो शिल्पी के हर शिल्प-स्वप्न को मूर्तिमन्त कर सकें।

इधर रोज ही एक वृद्धा उन अँगुलियों का पाषाणी लालित्य देख जाती है और प्रणाम कर जाती है भगवान् बाहुबली की उस मूर्ति को जो क्रमशः उभरती आ रही है।

वह उत्कण्ठ/उद्ग्रीव प्रतीक्षा कर रही है कि कब मूर्ति बने और कब वह उसका महामस्तकाभिषेक करे।

वह फटेहाल है, दरिद्रता ही जैसे मूर्तिमन्त हुई है उसमें।

किन्तु अभिषेक-पात्र उसने अद्भुत बनाया है। गुल्लकेय फल से एक सुधर/मुन्दर 'गुल्लिका' उसने बनायी है उतनी ही निष्ठा और उतने ही श्रम से जितनी निष्ठा और जितने श्रम से अरिष्टनेमि भगवान् की प्रतिमा बना रहा है।

उसका चिरपोषित स्वप्न है कि वह अकस्मात् ही दुग्धपूरित 'गुल्लिका' के साथ मूर्ति-मस्तक तक पहुँच जाएगी और अपनी गुल्लिका से दूध की ऐसी अजस्र धार उन्मुक्त करेगी कि उस सारी प्रतिमा को निमग्न कर देगी वह, इसीलिए उसने अपनी गुल्लिका में भारतीय मातृत्व को संयोजित किया है

अरिष्टनेमि की माता

चामुण्डराय - सेनापति चामुण्डराय की माता

का मातृत्व उसकी उस अकिञ्चन गुल्लिका में अनाहूत आ गया है

वह स्वयं तो इस बन्दना में सम्मिलित है ही

उसका मंगल संकल्प है कि इस मनोरम मातृत्व से वह पहला अभिषेक करे; किन्तु प्रश्न जटिल है और पूरी शक्ति से खड़ा है उसकी चेतना पर कि क्या राजकीय शक्तियाँ उसे वहाँ तक जाने देंगी ?

कौन उसे इतना गौरव-मण्डित करेगा ? कौन पूछेगा उसे ? दुत्कार दिया जाएगा उसे बुरी तरह।

वही हुआ भी है।

महामस्ताभिषेक की मंगलवेला समुपस्थित है

संगीत गूँज रहा है

चारों ओर जन-समुद्र तरंगायित है

सेनापति चामुण्डराय कलश-पर-कलश ढार रहे हैं

किन्तु यह क्या!!!

गुल्लिकाअज्जी को आने नहीं दिया गया है । वह निराश हुई है । उसकी आँखों में अश्रु-सिन्धु है

दुग्धधार ने नाभि से नीचे आने से इनकार कर दिया है

सबकुछ थम गया है/आश्चर्य में डूबे हुए सेनापति चामुण्डराय अपने पूज्य गुरु नेमिचन्द्राचार्य के चरणों में झुके हुए हैं और सुन रहे हैं—

‘सेनापते, अहंकार छोड़ना होगा । पहली धार गुल्लिकाअज्जी की होगी सादर लाओ उसे ।

श्रम को प्रणाम करो ।

श्रमण से पहले उसे प्रणाम करो सेनापते !!

श्रमण पर पहली धार पसीने से बने दूध की होगी, वात्सल्य की होगी, शिल्पी की माँ, सेनापति की माँ, और ‘गुल्लिका’ की माँ—

मातृत्व की यह त्रिवेणी ‘गुल्लिका’ में समायी हुई है

जब यह धार महामस्तक से उतरेगी तब चरणतल तो क्या तलातल तक अबाध चली जाएगी सेनापते !!

अतः

जब तक उस मूर्तिमती भक्ति को प्रणाम नहीं करोगे, उस जीवन्त श्रम के चरणों में मस्तक नहीं झुकाओगे, उस सर्वहारा चेतना को नमन नहीं करोगे, जो गुल्लिका-अज्जी के रूप में प्रस्तुत हुई है

तब तक तुम्हारा महामस्तकाभिषेक-संकल्प सार्थक नहीं होगा सेनापते !!’

और

लोकचक्षुओं ने देखा कि गुल्लिकाअज्जी की गुल्लिका की दुग्ध-धार विद्युत्गति से भगवान् के चरण-प्रदेश तक आ गयी है

चारों ओर जयजयकार हुआ है

दिग्दिगन्त गूँज उठे हैं

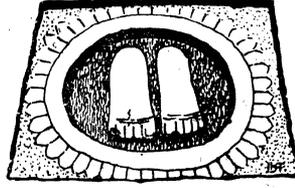
सब देख रहे हैं कि गुल्लिका विजयिनी हुई है

और स्वर्णकलश हार गये हैं ।

श्रम को शक्ति और संपदा ने प्रणाम किया है ।

और फिर उस क्षण के बाद

कौन पा सका है आज तक गुल्लिकाअज्जी को । तलाश आज भी है, इस क्षण भी है, और शायद आगामी क्षण भी वह उतनी ही उत्कट बनी होगी । □



## आकाश ने किये प्रणाम; धरती ने छुए चरण

परम तपस्वी भगवान् बाहुबली निश्चल/अकाम खड़े हैं  
आकाश उन्हें अपलक ताक रहा है  
भरत और उनकी पत्नी निनिमेष उन्हें देख रहे हैं

चित्त में हुआ है— “अकाम साधना का धनी यह कामकुमार . . . कितनी कठोर है इसकी तपश्चर्या !! अपरिमित बाहुबल का स्वामी कामाधिपति यह समन्तभद्र अपनी कांचन काया को तप की आँच में कितना अकिंचन किये दे रहा है !!! प्रणम्य है यह, प्रणम्य हैं इसके युगल चरण !!”

दोनों भाव-विह्वल हैं  
श्रद्धाभिभूत अंजलियाँ नमन में बँधी हैं  
आँखों के मंगल कलश करुणा से छलक रहे हैं  
भरत कह रहे हैं—

“प्रभो, आप सर्वतोभद्र हैं। आप आप-जैसे ही हैं, अनुपम, अद्वितीय. !!! आपने कामदेव होकर भी अकाम साधना की है, अहैतुक तप किया है। मोक्ष तो स्वयं चरणों में आ पड़ा है। उठायें उसे और अपने भुजबन्धों में समेटें। आप राजा हैं किन्तु आपने राग से अराग किया है,

बालक होकर भी आपने पण्डितों के ज्ञान को अतिक्रान्त किया है, अपर होकर भी आपने पर की इयत्ता को समझा है/जाना है। मैं तो आपके बाहुबल से मप गया हूँ। आपने मुझे धरती दी है। आप परमेश्वर हैं, परोपकार में एकमेव, अनुपम, अद्वितीय, अप्रतिम। आप-जैसे तपोधन, ऋषभ-जैसे जगद्गुरु इस जगत् को सहस्राब्दियों में कभी एक मिलते हैं,

लेकिन, हम-जैसे, रसना और स्पर्श की लालसा के क्षुद्र कीट असंख्य हैं, अ-गिन हैं; घर-घर हैं, डगर-दौर हैं;

क्रोधी, दूसरों को कष्ट में झोंकनेवाले, सविष, पापबहुल, पराधीन — कितने नहीं हैं ?”  
फिर . . . फिर तो सारा ब्रह्माण्ड दौड़ पड़ा और एक अदृप्त नाद उठा — चाँद-नक्षत्र, रात-दिन, उषस्-सन्ध्या, प्रपात-सरित् सब उन चरणों में झुक गये, यहाँ तक कि कैवल्य स्वयं उनके चरणों में आ बैठा, चारों ओर अपरिसमाप्त प्रकाश है।

भरत अयोध्या लौट आये हैं। वे धन्य हुए हैं। प्रजा धन्य हुई है। साकेत समृद्ध हुआ है समत्व से, शोभा-श्री से। आकाश ने नमन किया है और वसुधा ने चरणस्पर्श। एक लोकव्यापी पुलक . . . . . □



यह वही है क्या ?

प्रेक्षागृह खचाखच भरा है, और...

और सबकी आँखें मंच पर अपलक केन्द्रित हैं।

रूपसि नीलांजना के अविश्रान्त थिरकते/मचलते चरण प्रलय ढा रहे हैं।

नीलांजना से अपना सौन्दर्य-भार संभाले नहीं संभल रहा है

वह उन्मत्त है,

दीपक की अन्तिम अदम्य दीप्ति की भाँति।

भगवान् ऋषभदेव उसे निर्निमेष देख रहे हैं; किन्तु यह क्या...

नीलांजना के पाँव लड़खड़ाये हैं

उसकी साँस अन्तिम प्रस्थान की अनी पर ठीक वैसे ही उद्ग्रीव है जैसे

किसी तृण-शिखर पर चढ़ती दोपहरी में सूखता ओस-बिन्दु।

दृश्य बदल गया है। अनजाने कोई पटाक्षेप हुआ है।

नीलांजना अब नहीं है। कोई और नीलांजना ने नीलांजना की जगह ले ली है।

ऋषभदेव जान गये हैं कि नीलांजनाओं का यह क्रम अबाध/अटूट है।

इसे तोड़ने का कोई संकल्प उनमें सिर उठा रहा है/उठा चुका है।

उन्हें जीवन-मरण के पार तुरन्त निकल जाना होगा,

यह राह नीलांजनाओं के आगे की राह है,

भंगुरताओं को अतिक्रान्त करती

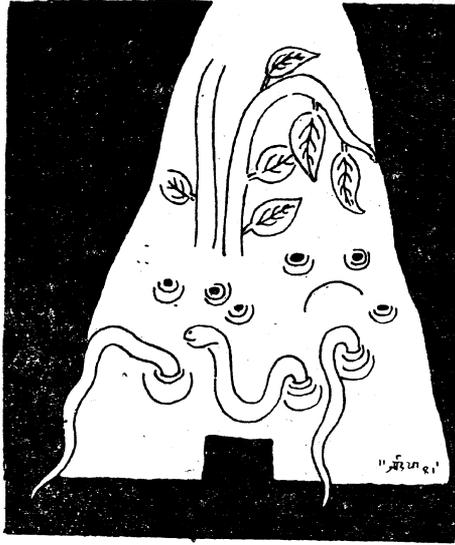
मनुजता को सफलताओं से अभिषिक्त करती  
यह अपराजिता डगर है ।

और . . . विरक्ति की नवनीलांजना भगवान् ऋषभदेव के मनोमंच पर नृत्य करने लगी ।  
वैराग्य की यह प्रथमानुभूति थी उस मन्वन्तर की,  
जो लोककल्याण का शुभंकर स्वरूप ग्रहण करने को आतुर थी ।  
उन्हें लगा नीलांजना एक सूचक है,  
लगा नीलांजनाएँ प्रायः सूचनाएँ होती हैं, शेष सब निर्भर करता है पुरुष  
की संवेदनशीलता पर ।

आज अभी लग रहा है/लगना चाहिये कि गोम्मटेश्वर की यह  
विशाल प्रतिमा मात्र पाषाण नहीं है अपितु इसके कण-कण में ऋषभ  
की वह प्रथम वैराग्यानुभूति है । सच, वही है, ज्यों-की-त्यों  
वही, केवल वही, अधिक तीव्रता और प्रखर प्रहारकता के साथ ।

[ ]

बाहुवली प्रसंग-१०



संभव है . . .

एक चिड़िया आयी और उस विशाल प्रतिमा के सामने बैठ गयी । दूसरी  
आयी और वह भी निर्निमेष बैठ गयी ।

तीसरी बैठी ही थी कि मेरा ध्यान चिड़ियों के झुण्ड की ओर गया और  
गया समानान्तर उस विशाल प्रतिमा की ओर जो ध्यानस्थ खड़ी थी और जिसकी

३२/तीर्थंकर : फरवरी ८१

करुणा का कोई छोर न था। चिड़ियाँ चहक रही थीं और मैं इस सारे दृश्य को भावविह्वल देख रहा था। मैं देख रहा था चकित/स्तम्भित उस वीतराग मुद्रा को। देख रहा था कि लताएँ बढ़ती जा रही हैं और प्रतिमा भी अपनी जीवन्तता में ऊर्ध्वग है। मुझे लग रहा था कि जैसे दोनों में कोई होड़ ठन गयी है। क्षण-भर को मैं ठिठका और मैंने उस वर्धमाना माधवी से कान में कहा : “तेरी यह होड़ व्यर्थ है। तू रुक भी जाएगी तो भी यह महान् योगी रुकेगा नहीं। इसका गन्तव्य निश्चित है। तू हार जाएगी।” वीरुध ने गोमटेश्वर के विरद को देखा और वह झुक गयी वन्दना में। चिड़ियों से यह दृश्य छुपा नहीं था।

मुझे तो कभी लगा ही नहीं कि यह प्रतिमा पाषाणी है। मेरे लिए तो यह आज भी वैसी ही जीवन्त/जाग्रत/सप्राण/ओपस्विनी है। मुझे इस क्षण भी यहाँ अरिष्ट-नेमि की छैनी की जगह सम्यक्त्व/भेदविज्ञान की छैनी की गूँज सुनायी पड़ती है। मैंने कई बार इस पाषाण की घड़कन सुनी है और पाया है कि जैसे एक सजीव तपश्चर्या यहाँ स्पन्दित है। चरण-प्रान्त पर जहाँ चिड़ियाँ चहक रही थीं—शायद गाती हों : “जिसने दसों दिशाएँ ओढ़ीं, जो अभीत मन; अम्बर छोड़े, मन जिसका प्रशान्त, प्रांजल है . . . . .।” —वहीं मुझे कुक्कुट सर्प रंगते दिखायी दिये, दिखायी दी उनकी बामियाँ। कोई विद्युत्गति से प्रवेश कर रहा है, कोई बाहर की ओर आ रहा है; किन्तु चिड़ियाँ अभीत हैं। चहक रही हैं। उन्हें कोई भय नहीं है। साँप निकल रहे हैं, तो वक्र हैं; जा रहे हैं, तो सीधे सटकारे हैं। मैं मुग्ध हुआ हूँ। देख रहा हूँ कि हम जब अपने भीतर पैठते हैं तब हमारी वक्रताएँ समाप्त हो जाती हैं; किन्तु जैसे ही संसार में लौटने को होते हैं, वक्रताएँ शुरू हो जाती हैं। मुक्ति और संसार का यह द्वन्द्व मैं और तीनों चिड़ियाँ देख रहे हैं। सारा दृश्य मनोज्ञ है। धरा-धाम से मुक्त उस महान् आत्मबली को मैं छूना चाह रहा हूँ; किन्तु मेरे हाथ छोटे पड़ गये हैं; तथापि मेरा चित्त-शिल्पी एक ऐसी ही मूर्ति घड़ने में जुट गया है। उसने आचार्य नेमिचन्द्र / अरिष्टनेमि से मन्त्रणाएँ की हैं; संभव हैं . . . !

□ □

### अक्षरदेह (आवरण ३ का शेष)



यह धरती  
जिस पर मेरी पगतलियाँ हैं  
किसकी है ?  
भरत की।  
काँटा कसका हुआ है  
ब्राह्मी, सुन्दरी समुपस्थित हैं  
मन हाथी से उतर रहा है  
कैवल्य-सूर्य उग रहा है

तीनों लोक जगमगा उठे हैं  
कविवर बोप्पण की समाधि अभी टूटी नहीं है ।

वे भरतेश के साथ पोदनपुर में हैं  
एक प्रतिमा बन रही है आदमकद  
हीरक छैनियाँ चल रही हैं  
प्रतिमा का नाकोनकश उभर रहा है  
लग रहा है जैसे बाहुबली जीवन्त खड़े हैं और तपश्चर्या में निमग्न हैं  
पर यह क्या !!

अचानक ही वह दृश्य लुप्त हो गया है ।  
बोप्पण प्रयत्न करते हैं तो कुक्कुट नागों का कोई टीला सामने आ लगता है  
मूर्ति अब गिरपत में नहीं आ रही है  
मन व्यथित है,  
किन्तु दृश्य बन नहीं पा रहा है ।

सदिर्याँ पतं-दर-पतं खुल रही हैं  
यह दसवीं सदी है  
अस्त की ओर झुकी ;  
सेनापति चामुण्डराय अपनी पूज्या माँ के साथ तीर्थाटन पर हैं ।

माँ ने सबकुछ त्याग दिया है  
वे बाहुबली की पोदनपुर-प्रतिमा के दर्शन पर दृढ़ हैं ।  
पुत्र चिन्तित है ।  
मूर्ति अनुपलब्ध है ।  
अब क्या हो ?  
स्नलोक में उसके पाँव हैं  
लग रहा है कि यदि इन्द्रगिरि से विन्ध्यगिरि पर कोई स्वर्ण-शर  
छोड़ा गया तो बाहुबली-प्रतिमा प्रकट हो जाएगी ।

बाण संधान पर है  
प्रत्यंचा कर्णमूल तक खिंची है  
तीर विन्ध्यशिखर चूम रहा है  
कोमल तीर की सुकुमार मार से संपूर्ण गिरि-प्रान्त काँप उठा है

और एक शीर्ष

आपोआप

बाहुबली के मन्मथी मुखमण्डल में बदलने लगा है ।

शिल्पी अरिष्टनेमि का दल हीरे की टाँकियों से विन्ध्यगिरि में प्राणप्रतिष्ठा करने लगा है

शिल्पी ने गोम्मटसार को गोम्मटेश्वर में टांक दिया है

आचार्य नेमिचन्द्र प्रतिष्ठा करा रहे हैं

चामुण्डराय कलश-पर-कलश ढार रहे हैं

किन्तु

महाभिषेक विफल हुआ जा रहा है ।

नेमिचन्द्राचार्य क्या करें ?

उन्हें लग रहा है कि भक्ति कहीं घायल हुई है ।

सर्वहारा की प्रतीक गुल्लिकाअज्जी को खोज लिया गया है ।

उसकी गुल्लिका के दुग्ध ने चामुण्डराय को अन्तर्मुख कर दिया है ।

सारा अहंकार गुल्लिका में डूब गया है

वीरमार्तण्ड ने श्रमण/श्रम दोनों को समानान्तर प्रणाम किये हैं

दुग्धधारा चरणमूल तक आ गयी है

दिग्दिगन्त उल्लसित है

बोप्पण को जैसे गुल्लिका की वह धार छू गयी है

उनके कण्ठ से सरस्वती फूट पड़ी है

वे गा रहे हैं :

"श्री गौमट्ट जिन् नटनागामर दितिज ....."

सारा वातावरण झनझनाया हुआ है

संपूर्ण स्तुति शिलोत्कीर्ण हुई है

आँख की सूई जिस पर पड़ते ही शताब्दियाँ मुखरित हो उठती हैं

आयें,

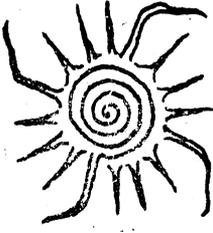
गोम्मटेश्वर की उस विशाल/मनोज्ञ प्रतिमा से पहले

उनकी इस अक्षरदेह को प्रणाम करें

उस अक्षरदेह को

जो

बोप्पण-जैसे महाकवि की लेखनी से निःसृत है ।



## मंगल मूर्ति

श्रवणबेलगोल में गोम्मटेश्वर की  
मंगलमूर्ति खड़ी है  
शिव-सायुज्य के इस अर्घ्यस्वरूप के अवलोकन से  
असीम शान्ति मिलती है ।

मस्तकाभिषेक पर भक्त  
और प्रजाजन  
देश से, विदेश से आते हैं  
और  
भक्ति-विभोर पूजन-अर्चन कर  
जिन-स्वामी का अनुग्रह पाते हैं ।

कार्कल वेणूर में भी  
गोम्मटजिन के दिव्य दर्शन सुलभ हैं ।  
मूर्ति-ध्यान से दिव्य चारित्र्य की दिव्यस्फूर्ति  
आँखों के सामने दीपित है, ज्योतिष है ।

भरतेश की सुख-सम्पत्ति  
धन-वैभव  
और बाहुबली का वैराग्य !!  
यदि धरती का मनुज समझेगा  
तो पायेगा सुख  
यहाँ भी, वहाँ भी ।

यह धरती  
कभी अपनी नहीं है,  
यदि इतना समझेगा नहीं और मानेगा इसे अपना  
तो दुःख-सुख का सागर गरजेगा-तरजेगा,  
और  
यदि आत्मज्योति से जगमगायेगा  
तो शाश्वत सुख, अमर शान्ति पायेगा,  
पायेगा ।

( कन्नड़ से अनूदित; संकलन : डॉ. सिरूर अनुवाद : डी. एफ. दंडिन )

## कर्नाटक के कला-किरीट गोम्मटेश्वर बाहुबली

भरत-बाहुबली-युद्ध बाहुबली के लिए नीलांजना सिद्ध हुआ। उन्हें लगा कि युद्ध से कहीं अधिक, श्रेयस्कर और महत्त्वपूर्ण कुछ है, जिसे आत्म-हित तथा जन-कल्याण के लिए खोजा जाना चाहिये। उनके इस निष्कर्ष से हमारा ध्यान युद्ध के एक दूसरे ही पहलू की ओर जाता है, वह यह है कि युद्ध तो सहज है ही, अयुद्ध की ओर जन-मन को मोड़ना कठिन है/ठुप्कर है। अ-युद्ध की ओर, युद्ध-रहित समाज-रचना की दिशा में बाहुबली का प्रयत्न सब में पहला था, महान् था, और इसीलिए प्रशस्त था। द्वार अभी भी बन्द नहीं हैं, प्रयत्न करने पर संभावनाएँ अनेक हैं।

—डॉ. नेमीचन्द्र जैन

श्रवणबेलगोल (कर्नाटक) स्थित गोम्मटेश्वर की विशाल मूर्ति को आज पूरे एक हजार वर्ष हो रहे हैं और जिसकी यह मूर्ति है उसे हुए कितनी सहस्राब्दियाँ व्यतीत हुई इसका कोई लेखा-जोखा हमारे पास नहीं है। समय के उस शिखर तक हमारे हाथ पहुँच भी तो नहीं सकते!! हाँ, धुँधला-सा कुछ दिखायी पड़ता है कि तब मानव-संस्कृति अपनी आँखें खोल रही थी और भोग-संस्कृति अवसान की ओर झुक आयी थी। अब तक आबादी की समस्या इतनी भयावह नहीं हुई थी; किन्तु उसका घनत्व बढ़ रहा था और जीवन-निर्वाह के साधन कम पड़ने लगे थे। भोगभूमि के अर्थशास्त्र ने घुटने टेक दिये थे। वृक्ष मौन हो गये थे। अब वे कल्प या कामना-वृक्ष नहीं रहे थे। ऐसे संकट में एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो प्रकृति के गूढ़/उर्वर स्रोतों के दोहन में मार्गदर्शन दे सके और यह बताये कि मनुष्य की प्रतिभा और पुरुषार्थ इन बदली हुई परिस्थितियों के साथ किस तरह कदम मिला कर चलें।

चौदह कुलकर हुए, जिन्होंने मानव-सभ्यता और संस्कृति को कोई-न-कोई नया आयाम दिया। प्रसेनजित् तेरहवें कुलकर थे, जिन्होंने प्रसूति की वैज्ञानिक विधि आविष्कृत की। उसके बाद हुए नाभिराय, जिन्होंने नाभि से मानव-शिशु को किस तरह विच्छिन्न किया जाए और उसे मानव-संस्कृति के योग्य कैसे बनाया जाए, इसकी शिक्षा दी। वस्तुतः यह शंख्य-विज्ञान की शिक्षा थी, न केवल महत्त्वपूर्ण बल्कि मनुष्य को बेहतर/कुशलतर मनुष्य बनाने की दिशा में एक प्रशस्त पग। कुलकरों की परम्परा ने मनुष्य को उत्तरोत्तर समर्थ बनाया और बनाया इस योग्य कि वह प्रगति के गूढ़ रहस्यों को समझ सके और उन्हें अपनी सेवा में सफलतापूर्वक जोत सके।

नाभिराय के पुत्र हुए ऋषभनाथ, जो जैनों के प्रथम तीर्थंकर हैं और जिन्होंने मनुष्य को व्यवहार-शिक्षा के साथ ही अध्यात्म की शिक्षा भी प्रदान की। उनके एक-सौ-एक पुत्र थे, भरत सबसे बड़े और बाहुबली छोटे; शेष निन्यानवे थे ओपस्वी, किन्तु वे इतने असाधारण नहीं थे कि संसार को कोई अभिनव जीवन-दर्शन देते। भरत ने मनुष्य को अनासक्ति का जीवन-दर्शन दिया तो बाहुबली ने अ-युद्ध और शान्ति का।

भगवान् आदिनाथ ने अपना काम पूरा हुआ देखा और वे स्वयं को खोजने, तथा आध्यात्मिक शक्तियों के खजाने को समस्त विश्व के लिए उद्घाटित करने के निमित्त वन की ओर चल दिये। उन्होंने सारा राजपाट छोड़ दिया यह देख कर कि 'काल कवलित करता है और क्षण क्षीण करता है, किन्तु कहीं कोई तत्त्व है जो महत्त्व का है और शाश्वत है'। उन्होंने आत्मावलोकन किया और अपने निन्यानवे पुत्रों के साथ उस अमृत को पाने निकल पड़े जो क्षणभंगुरता को प्रतिक्षण चुनौती देता है और तन की क्षण-सत्ता को ललकारता है। वीतरागता का वह प्रथम सूर्योदय था; उस वीतरागता का, जो आज कलवप्र के मनोरम शिखर पर खड़ी मुस्कुरा रही है और सारे विश्व को शान्ति तथा अमरता का संदेश दे रही है।

भगवान् आदिनाथ ने वैराग्य की दिशा में पाँव उठाते ही अपने तमाम राज्य को पुत्रों में बाँट दिया, सीमाएँ बना दीं, और चाहा कि सब सुख-शान्तिपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करें। भरत को अयोध्या और बाहुबली को पोदनपुर के राज्य मिले। बाहुबली संतुष्ट थे और पराक्रम, पुरुषार्थ तथा स्वाभिमान के धनी थे। चाहे जो हो, वे इस बात को सहन नहीं कर सकते थे कि कोई व्यर्थ की चुनौती दे और उसे मान लिया जाए। उनके जीवन में साहस और शौर्य की कोई कमी न थी। वे अभीत खड़े हुए और शान्तिपूर्वक वह सब करने लगे जिसका निर्देश आदिनाथ कर गये थे, किन्तु भरत ने दिग्विजय की शुरुआत की। अन्य भाइयों ने तो खिन्न हो कर, संसार की निस्सारता को समझ जिन-दीक्षाएँ ले लीं, किन्तु बाहुबली का स्वाभिमान तिलमिला उठा। जब भरत चक्रवर्ती का दूत उनके पास आया तब उसके साथ शालीन व्यवहार करते हुए भी उन्होंने युद्ध की घोषणा कर दी। यहाँ हम उनके साहस, जीवट और आत्मसम्मान की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। उन्होंने भरत को थोपे हुए युद्ध के लिए ललकारा और अपनी सेनाओं को तैयार कर दिया। इधर भरत की चतुरंगिणी भी सन्नद्ध हुई।

ऐसे में एक घमासान युद्ध की आशंका से कोई इन्कार नहीं कर सकता था, किन्तु मन्त्रियों ने कुशलता, सूझबूझ, दूरदृष्टित्व और रचनात्मक वृत्ति से काम लिया और राजाओं के आपसी बैरभाव की अपेक्षा जनता-जनार्दन के दुःख-सुख को अधिक महत्त्व दिया। कहा गया कि युद्ध से जनता का दैनंदिन जीवन ध्वस्त होगा, भीषण

रक्तपात होगा, और कुल मिलाकर जो भी घटित होगा उससे भारतीय संस्कृति कलंकित होगी अतः द्वन्द्वयुद्ध के द्वारा सारी समस्या सुलझायी जानी चाहिये। भरत और बाहुबली में दृष्टि, जल और मल्ल-युद्ध हुए। भरत पराभूत हुए, बाहुबली जीते। भरत चक्रवर्ती ने चक्र फेंका, किन्तु वह लौट आया। बाहुबली ने यह सब देखा और उन्हें मर्मान्तक पीड़ा हुई। वे वैराग्य की ओर मुड़ गये। राजपाट उन्हें रोक नहीं सका। अदभुत घटित हुआ। भरत-बाहुबली-युद्ध बाहुबली के लिए नीलां-जना सिद्ध हुआ। उन्हें लगा कि युद्ध से अधिक श्रेयस्कर, बड़ा और महत्त्वपूर्ण कहीं कुछ है जिसे आत्म-हित तथा जन-कल्याण के लिए खोजा जाना चाहिये। वे बारह वर्ष की दुर्द्धर तपस्या में प्रवेश कर गये। वे खड़े थे और उन्हें भान ही न था कि वे खड़े हैं। वे पता लगा चुके थे कि वे शरीर नहीं हैं, उससे भिन्न और बहुत आगे हैं। शरीर को जीर्ण वस्त्र की तरह जानने/उतार फेंकने में उन्हें देर नहीं लगी। भेदविज्ञानवर्ती तपस्या ने उनके जीवन का आकार ही बदल दिया।

वैसे जब मन्त्रियों ने परामर्श दिया कि युद्ध को सीमित रखा जाए और दोनों भाई ही समस्या का कोई समाधान ढूँढ़ें और जरूरी हो तो द्वन्द्व करें; उन्होंने चाहा कि सारे राज्य/दिश की जनता को व्यर्थ ही युद्ध में फँसाया न जाए। इसे भरत-बाहुबली ने माना और तत्कालीन जनता को एक भीषण रक्तपात से बचाया।

देखा गया है कि युद्ध प्रायः व्यवितगत दिलचस्पियों के कारण होते हैं जिनके दुष्परिणाम बहुधा उन लोगों को झेलने/भोगने पड़ते हैं जो निरीह/निर्दोष होते हैं। इस युद्ध के न होने की घटना से बाहुबली की स्वस्थ मानसिकता का अनुमान लगता है। उनके साथ बाहुबल तो था ही, उनमें अपरंपार आत्मबल भी था। भरत के साथ जो बल था उसकी पृष्ठभूमि पर विस्तार और लोभलिप्सा सक्रिय थी। वस्तुतः वे राज्य-विस्तार और मिथ्यादम्भ के लिए ही जूझ रहे थे। दूसरी ओर बाहुबली विस्तार की जगह आत्मरक्षा के निमित्त युद्ध की ओर आये थे। युद्ध उन्होंने कभी चाहा नहीं, वह उन पर थोपा गया। उनके इस बर्ताव से हमारा ध्यान युद्ध के एक दूसरे ही पक्ष की ओर जाता है, वह यह कि युद्ध तो सहज है ही, अ-युद्ध की ओर जन-मन को मोड़ना दुष्कर है। अ-युद्ध की ओर, युद्ध-रहित मानव-समाज-रचना की दिशा में बाहुबली का प्रयत्न सबसे पहला था, महान् था, और इसीलिए प्रशस्त था। बाहुबली ने इस प्रयोग को सफल-सार्थक सिद्ध किया कि शासन का अधिकार उसे ही है जो स्वयं भुजबली हो और जिसमें अपार आत्मबल हो, जिसका अपना चरित्र-वैभव हो। केवल विस्तार-लिप्सु और सत्तालोलुप व्यक्ति शासक बने, यह न्यायोचित नहीं है। शासक होने/बनने से पहले यह सिद्ध करना जरूरी होगा कि मानव-संबन्धों के लिए शासक का दर्शन क्या है? क्या शासक अपने

प्राणों के तुल्य जनता के प्राण मान रहा है, या अपनी लिप्सापूर्ति और स्वार्थान्धता के लिए सारे राज्य/दिश को ध्वंस की ओर धकेल रहा है ?

वस्तुतः अयोध्या का राजा जो नहीं दे सका, वह बाहुबली ने दिया। उन्होंने यह साबित किया कि मात्र ज्येष्ठ होना ही पर्याप्त नहीं है, श्रेष्ठ होना भी आवश्यक है। भरत ज्येष्ठ थे, बाहुबली छोटे थे। भरत को बाहुबली की मानसिकता में जीने में जो सुख मिला उसकी बराबरी संसार की कोई संपदा नहीं कर सकती।

करुणा, क्षमा, तपश्चर्या और आध्यात्मिक पुरुषार्थ की जीवन्त मूर्ति बाहुबली एक ऐसी खुली पुस्तक हैं, जिसे मानव-संस्कृति बार-बार पढ़कर भी कभी संतुष्ट नहीं होगी। तपश्चर्या में डूबे हुए हैं। कुक्कुट साँपों ने बामियाँ बना ली हैं, किन्तु बाहुबली अविचल/अभीत खड़े हैं। समत्व की इस उत्कृष्ट भूमिका में जीना और आत्मानुसंधान करना कितना दुष्कर है, इसकी कल्पना-मात्र से लोमहर्षण होता है। हमारा रोआँ-रोआँ काँप उठता है; किन्तु बाहुबली ने निश्चल तन-मन से यह सब किया और विश्व के सामने एक अभिनव आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने कहाँ देखा कि उन पर चींटियों के नगर बस गये हैं, माधवी लताएँ लिपट गयी हैं, और पक्षियों ने नीड़ रच लिये हैं। बल्कि उन्होंने देखा कि वे आत्मनीड में किस तरह प्रवेश कर सकते हैं। उन्होंने देह को विदेह की अभिनव/अप्रतिम प्रयोगशाला ही बना डाला। निःशल्य वे हुए और उन्हें कैवल्य हुआ। चाहे-यह कथा ही क्यों न हो, किन्तु यह निश्चित है कि तप की सफलता के लिए अविचल और असदिग्ध होना आवश्यक है।

उस घटना तक तो कालपट को चीर कर हमारा पहुँच पाना संभव नहीं है, किन्तु ५७ फुट ऊँची इस विशाल प्रतिमा को देखकर उस परम पुरुष की कल्पना करना हमारे लिए कठिन नहीं है। सहस्र वर्ष हुए हैं उस घटना को; किन्तु हम यह अवश्य जानें कि जो विशाल मूर्ति हमारे सामने खड़ी है और जिसने श्रवणबेळगोळ को एक महान् विश्वतीर्थ बनाने का सौभाग्य प्रदान किया है, उसकी संपूर्ण पृष्ठभूमि क्या है ?

दसवीं सदी अस्तंगता थी। गंगसेनापति की माता काललदेवी पोदनपुर के उस बाहुबली-विग्रह के दर्शन करना चाहती थीं (जिसे भरत चक्रवर्ती ने कभी बनवाया था; किन्तु जो उपलब्ध नहीं है); सब कुछ स्वप्न में आया और सेनापति चामुण्डराय ने एक स्वर्ण-तीर चन्द्रगिरि से विन्ध्यगिरि पर छोड़ा। देखते-देखते स्वप्न यथार्थ में बदल गया। बाहुबली प्रतिमा का गुम्मत (शिरोभाग) दिखायी दिया, चट्टानें काँप उठीं, विन्ध्यगिरि काँप उठा। और इसके बाद जो हुआ वह कर्नाटक राज्य के सांस्कृतिक इतिहास का एक रत्नपृष्ठ है। किस तरह सारी पहाड़ी को स्निग्ध किया गया, मूर्ति को एक ही प्रस्तर में किस तरह उत्कीर्णित किया गया,

और कैसे यह विशाल प्रतिमा शनैः शनैः अरिष्टनेमि की छैनी से निःसृत हुई/प्रसृत हुई/उभरी, यह सब हमारे प्राणों को तो पुलकित करता ही है सारे देश को भी एक प्रसन्न-पुलक से भर देता है। मूर्ति बनती नहीं गयी वरन् शिल्पी अरिष्टनेमि भी उसमें से बनता गया। कहाँ रह गया उसमें कोई लोभ, कोई लालच, कोई लिप्सा, कोई परिग्रह-कांक्षा, वह तो छैनी चलाता गया और विन्ध्यगिरि को एक अभूतपूर्व तपस्या में बदलता गया। उसकी और भगवान् बाहुबली की तपस्याओं का यह परम तादात्म्य संसार में किसे नहीं मोहेगा? दोनों हैं इसमें, अरिष्टनेमि जो दिखायी नहीं देता और बाहुबली का आत्मबल जो इस पाषाण में, उसके कण-कण में पूरी जीवन्तता से वर्तुलित है। कितना धन्य हुआ है पाषाण यहाँ उस अजस्र अध्यात्म-वैभव को समेट कर !!!

इतना ही नहीं आज से एक सहस्र वर्ष पूर्व ९८१ ई. में जब इस प्रतिमा की प्रतिष्ठापना हुई और आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती के सान्निध्य में “तं गोम्मटसं पणमामि णिच्चं” के स्वर गूँजे तब भी जल की/दूध की अजख धाराएँ मूर्ति के चरणतल तक क्यों नहीं पहुँच सकीं? एक सहज प्रश्न इस जनश्रुति में धड़क रहा है। नहीं पहुँचीं, इसलिए कि श्रम और श्रमण में एक अटूट रिश्ता है। श्रम की उपेक्षा उस समय हो जब किसी महाश्रमण का अभिषेक हो रहा हो, तब वह असह्य है। श्रम बाह्य तप है, श्रामण्य अन्तर्वर्ती। सर्वहारा-चेतना का जो सन्मान इस महान् विभूति के साथ जुड़ा हुआ है, वह असाधारण है। गुल्लिकाअज्जी की



अकिचन गुल्लिका ने सर्वहारा की प्रतिष्ठा और सन्मान की रक्षा की और सिद्ध किया कि आकिचन्य चाहे भगवान् बाहुबली का हो या सर्वहारा का, पूज्य है, सम्मान्य है; सिद्ध किया कि भक्ति का अभिषेक समृद्धि से पूर्व होता है। गुल्लिका-अज्जी जीवन्त भक्ति-

विग्रह हैं और बाहुबली उस भक्ति के नाभिकेन्द्र। कौन पा सकता है इन दो उदात्त ऊँचाइयों को? अन्ततः आचार्य नेमिचन्द्र को यह कहना पड़ा कि उसे पहले लाओ तो ही प्रतिष्ठापन/महामस्तकाभिषेक होगा अन्यथा नहीं; और वही हुआ भी। प्रीति-भक्ति की वह विरल धार अविरल बनी, समुद्र बनी और चरणप्रदूमों तक दौड़ आयी। सब धन्य हो उठे। जयघोषों से श्रवणबेळगोळ का आकाश गूँज उठा ! †

आयें हम कर्नाटक के इस कला-किरीट गोम्मटेश्वर महान् की वन्दना करें, उस भाग्यशाली अवसर पर, उस मंगलबेला के निमित्त जो २२ फरवरी १९८१ को हमारी नेत्र-संपदा होगी और हमें धन्य करेगी। □

## उठी हुई मुट्ठी

तुम /

शीत-ताप की अनुभूतियों से विहीन,  
पीड़ा और आनन्द के अहसास से मुक्त/  
अपने-आपको जानना चाहते थे/

स्व की पहचान

कौन हूँ ? कहाँ से आया ? कहाँ जाना ?

उस स्थिति तक

जब प्रश्न शेष नहीं रहते,

तुम्हारा लक्ष्य था/

एक ज्योति, एक आभास, केवल आत्मा का अस्तित्व

तुम पाना चाहते थे/

उस क्षण को भी भूल चुके थे तुम

जब अग्रज भरत/चक्रवर्ती भरत

तुमसे सर्वप्रकारी युद्ध में घोर पराजित हुए /

और/उन उदात्त भावनाओं के वशीभूत हो

उन्होंने न्याय के प्रतिकूल युद्धाचरण किया/

तुम्हारी दण्ड देने के लिए उठी हुई मुट्ठी/

देवताओं और मनुजों की करुण प्रार्थना पर

गिरी तो सही/

लेकिन स्वयं के मस्तक पर/जहाँ

केशलौच किया तुमने/और

श्रमण-साधना अंगीकार की ।



—बिल्लीप सुराणा

## जब गोम्मटेश्वर ने डग भरा

—वीरेन्द्रकुमार जैन



अपने आजीवन अभावों और संघर्षों के चलते मैं आज तक भी गोम्मटेश्वर प्रभु के दर्शन न कर पाया। लेकिन बालपन से ही उस विराट् पुरुष के दर्शन को मेरी सौन्दर्य-प्यासी आत्मा छटपटाती रही है। तो उस बेचैन पुकार के उत्तर में स्वयम् भगवान् गोम्मटेश्वर मेरे स्वप्न में सर्वांग साकार प्रकट हुए। वह स्वप्न जैसा देखा, ठीक वैसा ही यहाँ एक कथा-फन्तासी के रूप में प्रस्तुत है।”  
—लेखक

एक सपना आया। कब आया था, यह कहना जरूरी नहीं है, क्योंकि इस क्षण भी वह इतना सच्चा और ताज़ा है, मानो गयी रात की बात हो। अतीत में वह खो नहीं सकता, वर्तमान पर वह अटका नहीं है, और भावी के क्षितिज पर उसके हृदय की आभा फटती दिखायी पड़ रही है। इसी से उस स्वप्न की बात को निजी सम्पदा बनाकर नहीं रखा जा सकता, वह जगत् को सुना देनी होगी।

माँ और चाचा के साथ तीर्थयात्रा पर निकला हूँ। भीतर पुकार है कि गोम्मटेश्वर के दर्शन कहेगा, और हम ट्रेन में उसी राह पर हैं।

शीत ऋतु की मध्य रात है, गाड़ी बैंगलौर के मार्ग पर है। अपनी रज़ाई में दुबका सोया मैं मन-ही-मन सोच रहा हूँ, बचपन से ही जिस विराट् जिन-पुरुष की छवि मन पर अंकित हो गयी थी, कल सवेरे उसका साक्षात् दर्शन हो जाएगा। जाने कैसे परम मिलन की आकुल माधुरी सारे अन्तरंग में घल रही थी।

और पौ फटते-फटते, जाग कर गाड़ी की खिड़की में से झाँका, मीलों दूर विन्ध्यगिरि पर्वत पर भोर के धुंधलके की परतों को चीरता हुआ एक प्रचण्ड नील कमल उदय होता दिखायी पड़ रहा है।

ओह, तो यही है वह आकाश-पुरुष, यही है वह अनन्तों का सम्राट् ! क्या यही है वह प्रकृति के दुर्दम बाहुबन्ध में भी मुक्त रमण करने वाला अजित वीर्य कामकुमार बाहुबली ? छलछलाते नयनों से निहारता ही रह गया। प्रणति में माथा झुका या नहीं, याद नहीं आता। मैं तो शायद अपने में ही नहीं रह गया था।

और जाने कब गन्तव्य स्टेशन, करीब आने लगा था। वह दिगन्त-वाही मूरत आँखों से ओझल हो गयी थी।

फिर कब स्टेशन आया, कैसे उतरे, किस वाहन से कहाँ चले, कुछ याद नहीं आता।

चलते-चलते एकाएक सामने दिखायी पड़ा, कि एक विशाल, प्राचीन शिखर-कँगूरों वाले परकोटे से धिरा मंदिर प्रांगण है। भीतर दूर तक सह्याद्रि के पर्वत कूटों-सी शिखर-मालाएँ दिखायी पड़ रही हैं। चारों ओर एकदम विजन सूनापन था। सामने का वह भव्य कारु शिल्पित तोरण भी नितान्त शून्य और जनहीन था। कोई निपट पारलौकिक लगा वह प्रदेश।

उस तोरण में से मानो छायाओं की तरह गुजरते हुए हम प्रांगण में जा पहुँचे। चारों ओर नवप्राचीन मंदिर श्रेणियाँ हैं, अद्भुत और दिव्य। देवालियों की यह परम्परा कहाँ तक चली गयी है, कुछ पता ही नहीं चलता।

उसके पश्चात् हम बिना दीवारों के, निरे खम्भों पर आधारित विशाल देवालय में आये। यहाँ रंग-रंग के पाषाणों की बड़ी ही मनोज्ञ मूर्तियाँ जहाँ-तहाँ चारों ओर दिखायी पड़ रही हैं। बादली, मलयागिरि, गैरिक, मूंगिया, नीले, जामुनी और घने नीले रंग की वे मूर्तियाँ मानो अनगिनत होती गयीं। एकदम नवीन, ताजी और बोलती-सी। मानो अभी-अभी कोई शिल्पी उन पर अपना अन्तिम स्पर्श देकर चला गया है, और सौन्दर्य के इस साक्षात् स्वर्ग में मानो हम पहले दर्शक और यात्री हैं।

एक गाइड हर मूर्ति के सामने ले जा कर मुझे खड़ा कर देता, और जैसे कि मूक अँगुली का संकेत कर बताता, यही हैं गोम्मटेश्वर। और मैं इनकार करता ही चला गया, नहीं हैं यह गोम्मटेश्वर, उस आकाशविहारी, मन्दरचारी\* पर मन्दिर का साया कैसे हो सकता है? पर उन मूर्तों की माया तो एक-से-एक अधिक अपूर्व होकर सामने आ रही थी। ऐसी परम आनन्द की मुद्रा से दीपित, ऐसी तन, मन, प्राण को मोह लेने वाली थीं वे मूर्तें। मनोज का वह चरम काम बाल रूप ही तो है, जो आप अपना स्वामी हो गया है।

और अकल्पित नव-नवीन मणियों, रत्नों, उपलों की अन्तहीन मोहन माया में वे मूर्तें एक से अनन्त होती दिखायी पड़ीं। पर रंग और सौन्दर्य के उस अलौकिक प्रदेश में भी मैं पुकार उठता था, ये गोम्मटेश्वर नहीं हैं, गोम्मटेश्वर के दर्शन अभी शेष हैं। मानो कि वह मूर्ति से कुछ अधिक है, वह प्रकृति की गोद में निःशंक और निर्द्वंद्व रमण करने वाला, वह देश और काल को अपने यान के पंख बना कर उन पर आरोहण करने वाला अनन्त सृष्टियों का द्रष्टा और सृष्टा है।

और मैं उसी की खोज में दौड़ कर मन्दिर से बाहर निकल आया। पर इस बार किसी दूसरे ही द्वार से निकला था, और कहीं और ही आ गया था।

\*'मन्दर' माने पर्वत: 'मन्दरचारी' याने पर्वतचारी। यह अप्रचलित संस्कृत शब्द है।

और दूर-दिखायी पड़ा कि माँश्री और चाचाजी ठहरने के मुकाम के प्रबन्ध में बहुत व्यस्त हैं। तीर्थ-क्षेत्र की धर्मशाला के व्यवस्थापक आ गये हैं। सामने ही उधर धर्मशाला की ओर सामान बढ़ रहा है। चाचाजी उनसे पूजा के द्रव्य, सिगड़ी, बर्तन, आटा-सामान और आवश्यक वस्तुओं के बारे में पूछताछ कर रहे थे, और मैं तत्काल यह जानना चाहता था कि कहाँ खड़े होकर तुरन्त मुझे गोम्मटेश्वर के दर्शन हो जाएँगे। बस, उधर ही बढ़ जाने को मैं एकाग्र, चित्त से आकुल और उतावला था।

कि कहीं से न जाने किस अलक्ष्य आवाज़ ने पुकार कर कह दिया : 'बह देख, उधर है परम-तपस्वी गोम्मटेश्वर!' मुड़ कर मैंने देखा :

पहले एक पहाड़ी की ऊँची और तुकीली कगार दूर पर दिखायी पड़ी, और ठीक उसकी ओट से झाँक रहा था सागर की उन अगमवाहिनी लहरावलियों के समान कल्याणी-सरोवर से ऊपर विन्ध्यगिरि पर खड़ा था वह विराट् विश्व-पुरुष। नहरों की उस अपार चल लीला के बीच वह अविचल, कूटस्थ और एकाकी था। आसपास के सारे देशकाल के परिणमन के साथ अपनी अन्तर्जाति में तदाकार होकर भी, वह उन सबसे ऊपर था, उस सबका केवल वीतराग द्रष्टा था।

मेरे मन में एक तीखा प्रश्न कसक उठा, क्या वह मात्र द्रष्टा है? क्या वह सृष्टा नहीं है, विधाता नहीं है, इस विश्व-लीला का परिचालक और स्वामी नहीं है? क्या वह लोक-जीवन के विकास और प्रगति का नियन्ता और शास्त्र नहीं है? तो क्या वह लोक से एकदम बेसरोकार, अपने-आप में बन्द है? क्या उसके और हमारे बीच कोई एकत्व नहीं है, योग नहीं है, आत्मीयता नहीं है? मेरा मन एकदम कातर, अनाथ हो आया। ऐसे प्रभु का क्या होगा, जिसकी केवल पूजा हो सकती है, जिससे प्रीति नहीं हो सकती, मिलन नहीं हो सकता।

... मैं विद्रोह से आकण्ठ भर आया और मेरा दाका स्वयं सत्य की तरफ ज्वलने हो उठा। मुझमें एक चुनौती तीर के वेग से सनसना रही थी। पर हृदय में आकुल, विह्वल समर्पण भी हिलोरें मार रहा था। अजस्र आत्मीयता का एक स्रोत अगोचर से उमड़ता चला आ रहा था।

... और मैं बेतहाशा उस कगार की ओर भाग चला। मेरे सामने केवल वह विराट् दर्शन था, बीच में रास्ता नहीं था, सो कोई बाधा भी नहीं थी। और मानो मैं भी नहीं रह गया था, थी केवल एक अनिवार गति।

और भागते-भागते जब कहीं एक आदमी से टकराया।

जिस आदमी से टकराया था, वह मेरे सामने ही खड़ा, भौंचक्का-सा मुझे देख रहा था। मैंने उससे पूछा : 'गोम्मटेश्वर कहाँ हैं? किस रास्ते ठीक वहीं पहुँच जाना होगा?'

आदमी बोला : 'सीधे चले जाइये, यह बाज़ार जहाँ खत्म होता है, वस वहीं ठीक सामने जो मन्दिर दिखायी पड़ेगा, उसी में चले जाइयेगा।'

'मन्दिर .....? खैर.....'

और मैं फिर तेज़ चाल से लगभग दौड़ता ही चला गया। बात-की-बात में उस मन्दिर के सामने आ खड़ा हुआ, जहाँ वह रास्ता समाप्त हो जाता है।

यह मन्दिर सामान्य मन्दिरों से अलग है। कई छोटे-छोटे द्वार और गवाक्ष हैं इसमें। और कपाट प्रायः सभी के बन्द हैं। यहाँ भी वही सूनापन है, वही निर्जन निरालापन चारों ओर घना हो रहा है। अचानक एक गुफानुमा द्वार मन्दिर की वेदी में खुला दिखायी पड़ा। एक अजीब आतंक से भरा आवाहन था उसमें। भीतर गया कि सामने ही चौड़ी सीढ़ियाँ लगी थीं, जिन पर मैं चढ़ता ही चला गया। ऊपर पहुँचा तो देखता हूँ, कि एक चौक है, जिसके चारों ओर खम्भों की अनेक अवलियों से घिरे सभा-भवन हैं। चौक के ऊपर ढकी जाली में से कुछ मद्धिम-सी रोशनी चौक में पड़ रही है। उन सभा-भवनों में एक घनीभूत एकांत और दर्प से भरी निरालयता है। घुप अन्धकार खम्भों के आसपास नाना रूप-आकृतियों में उठ-उठ कर मिट रहा है, और खम्भों के अन्तराल में दूर पर दोनों ओर दिखायी पड़ीं जिनालय की श्रेणियाँ। उनकी दीवारों और मेहराबों में सुवर्ण और रंगबिरंगी मीना-कारी का काम जगमगा रहा है। जिनालयों के भीतर भी वैसी ही बहुरंगी मणियों से जटित दीवारों के सहारे, सप्तधातु की बनी तीर्थकरों की विशाल मूर्तियाँ विराज-मान हैं। वेदी के पाद-प्रान्त में खड़े ऊँचे नीराजनों पर चल रही दीपों की जोत में मूर्तियाँ दमदम कर रही हैं। उनके रत्न-जटित भामण्डलों और छत्रों से नाना रंगी प्रभा की किरणें उस अन्धकार में रह-रह कर चमक उठती हैं। एक अथाह, तीखी और भयावनी शीतलता में मैं उतराता ही चला जा रहा हूँ।

..... उस निःस्तब्ध, निरालय देवालय में मैं एकदम एकाकी छूट गया हूँ। पाया कि गोम्मटेश्वर तो यहाँ भी नहीं हैं। अब कहाँ जाना होगा! किससे पूछना होगा? लौट कर देखा, तो द्वार कहीं नहीं दिखायी पड़ता है। जहाँ खड़ा हूँ, पैर वहीं चिपक गये हैं। खम्भों की सरणियों में, वह एक अद्भुत रहस्य से भरा आतंक सजीव होकर अंगड़ाई-सी ले उठता है। सप्तधातु की उन जिन मूर्तियों की वे वीतराग मुस्कानें परीक्षा के प्रश्न-चिन्हों-सी मेरी आँखों में रह-रहकर नाच उठती हैं। पर उनके पार होकर कहीं मेरी गति नहीं है। बस, यहीं मानो चरम विराम है। पर भीतर यह अवरोध क्यों, यह घुटन क्यों? विराम कहाँ है यहाँ? विराम यदि है, तो क्यों है मुझमें बेचैनी? क्यों हो गया हूँ यहाँ मैं कीलित और बन्दी?

क्या कोई व्यन्तर-माया है यह? और मेरी रूढ़ काँप उठी। भय और घबराहट से मेरा श्वास अवरुद्ध होने लगा। लगा कि पता नहीं, कब किस खम्भे

की ओट से कोई व्यन्तरे, देव या यक्ष निकल आयेंगा, और आकर मेरा कण्ठ दबोच देगा . . . और तब . . . ? और उन चारों ओर के खम्भों के अन्तरालों में, उन मीना और मणियों की नानारंगी किरणों में से, उन मूर्तियों की पीली विभा में से अनेक अद्भुत आविर्भाव उस आसपास के मद्धिम अन्धकार में तरंगित होने लगे।

मेरे भीतर पुकार तीव्रतर हो रही थी, 'कहाँ है गोम्मटेश्वर ? कहाँ है गोम्मटेश्वर ? वह, जो अनन्तों में सूर्य की तरह उद्भासित और प्रकट है, जो केवल रहस्य का निगूढ़ अन्धकार नहीं है, जो सुवर्ण और रत्नों की जड़ीभूत पुण्यप्रभा में क़ैद नहीं हो गये हैं . . .

'उधर ऊपर हैं, गोम्मटेश्वर !' अचानक आकाश से शब्दावलि गुंजित हुई।

मैं वैसा ही बच्चे की तरह दौड़ पड़ा। पलक-मारते मैं लपक कर वे सीढ़ियाँ चढ़ गया। ऊपर आकर देखता हूँ, एक विस्तृत, विशाल, स्वच्छ और श्वेत अटारी के ऊपर एक और अटारी है, जैसे यह कोई पर्वत कूट है, और जो दृष्टि ऊपर को उठी, तो अन्तरिक्ष को चीरती ही चली गयी। . . .

. . . अरे, ये खड़े हैं गोम्मटेश्वर। दसों दिशाएँ मानो विनत होकर उस विशाल चरण-युगल-तले नील कमल बन कर बिछ गयी हैं। अनन्तों की गहन, अशेष नीलिमा के भीतर से यह कौन उत्तुंगकाय व्यक्तिमत्ता अनायास रूप देकर प्रकट हो गयी है ? आकाश ने इसके बाहुमूलों में मुँह दुबका लिया है। ससागरा पृथ्वी इसके चरणों में लिपटी पड़ी है। कोमल और कराल ने समानरूप से इसका प्यार पाया है। यदि इसकी बाहुओं और जँघाओं ने कोमल माधवी लताओं के परिरम्भण स्वीकार किये हैं, तो इसकी रानों पर भुजंगम विषधरों ने अपने चुम्बन भी अंकित किये हैं। प्रकृति की परम वत्सला गोद में शिशु की तरह अभय आत्मार्पण करके, यहाँ पुरुष ने उसके हृदय पर प्रभुता प्राप्त की है। निरंजन, निराकार असीमता ने यहाँ सीमा का वरण किया है। क्या मानवीय कल्पना ने कभी इससे अधिक भव्य-दिव्य सपना देखा है ? मुक्त अलकावलि से शोभित उस कोटि सूर्यों-से प्रचण्ड प्रतापी मुख-मण्डल पर, जगत् के सारे दुःख-द्वन्द्व, क्लेश-विषाद की सारभूत छाया पड़ रही है। पर नासाग्र पर स्थिर वह दृष्टि एक निर्बाध विजेता की समता और वीतरागता लिये एकदम निर्विकार और भावशून्य है, और उन सुदृढ़ फिर भी कमनीय ओटों के बीच जो मुस्कान दीपित है, उसमें सर्वजन-वल्लभ का सम्पूर्ण प्यार लहरा रहा है। मानो निरंजन, निराकार, सच्चिदानन्द ने निर्बन्धन होते हुए भी, ईषत् मुस्करा कर काया-माया के बन्धन को स्वीकार कर लिया है। . . .

. . . और मेरी नज़र जो आसपास गयी, तो देखा कि वहाँ केवल सरोवर की लहरों की वह अविराम और निर्जन परिणमन की लीला चल रही है। देखा, कि दूर-दूर तक हरियाले खेतों से लहलहाती धरती है, वन-वनस्पतियों के प्रसार हैं।

जहाँ-तहाँ नदियों की सुनील रेखाएँ हैं। इधर-उधर छिटके-लोकालय हैं, बस्तियाँ हैं, किसान खेतों में हल चला रहे हैं।

... और अचानक मैंने पाया कि जाने कब मैं उन प्रकाण्ड चरणों से निपट फूट-फूट कर रो पड़ा। केवल एक ही प्रश्न अनेक होकर मेरे अन्तर्गत को रहस्य कर बाँध रहा था।

‘क्या तुम इस सबके केवल बीतराग द्रष्टा हो? क्या तुम सृष्टा नहीं हो? मरण, विनाश, दैन्य, विषमता, संघर्ष, क्लेश से पीड़ित इस लोक-जीवन से क्या तुम्हारा कोई सरोकार नहीं? हमारे सुख-दुखों के प्रति क्या तुम एकदम निर्मम हो? इस लोकालय के क्या तुम कोई नहीं होते? क्या तुम हमारे स्वजन नहीं, वल्लभ नहीं, परित्राता नहीं? क्या तुम महिमा और प्रभुता से घिरे निरे उत्तुंग मुक्त पाषाण-प्रभु हो, जिनके साथ हमारा केवल पूजा का नाता है, प्रेम का नहीं? हे परम सत्य, क्या तुम केवल मुक्ति हो? क्या तुम जीवन नहीं हो? ... और कैसी दारुण और भयावह है वह मुक्ति, जहाँ सब अपने में बन्द हैं, जहाँ सब एक-दूसरे से टूट कर अपने-अपने में पर्यवसान पा गये हैं! क्या तुम ऐसे ही मुक्तात्मा हो? क्या तुम केवल केन्द्र हो, विस्तार नहीं? क्या तुम केवल स्थिति हो, गति नहीं हो, प्रगति नहीं हो? क्या जगत् का जीवन सदा ऐसे ही मरण, विनाश, संघर्ष और मिथ्या के बीच चलता रहेगा? क्या मानव का भाग्य चिरकाल तक ऐसा ही पराधीन और पराजित रहेगा? क्या कोई उत्तरोत्तर विकास-प्रगति जैसी चीज़ नहीं है? हे परम सत्य, क्या तुम केवल मुक्ति हो, जीवन नहीं हो, अनन्त प्रगतिशील जीवन के सृष्टा, विधाता और परित्राता नहीं हो? ...’

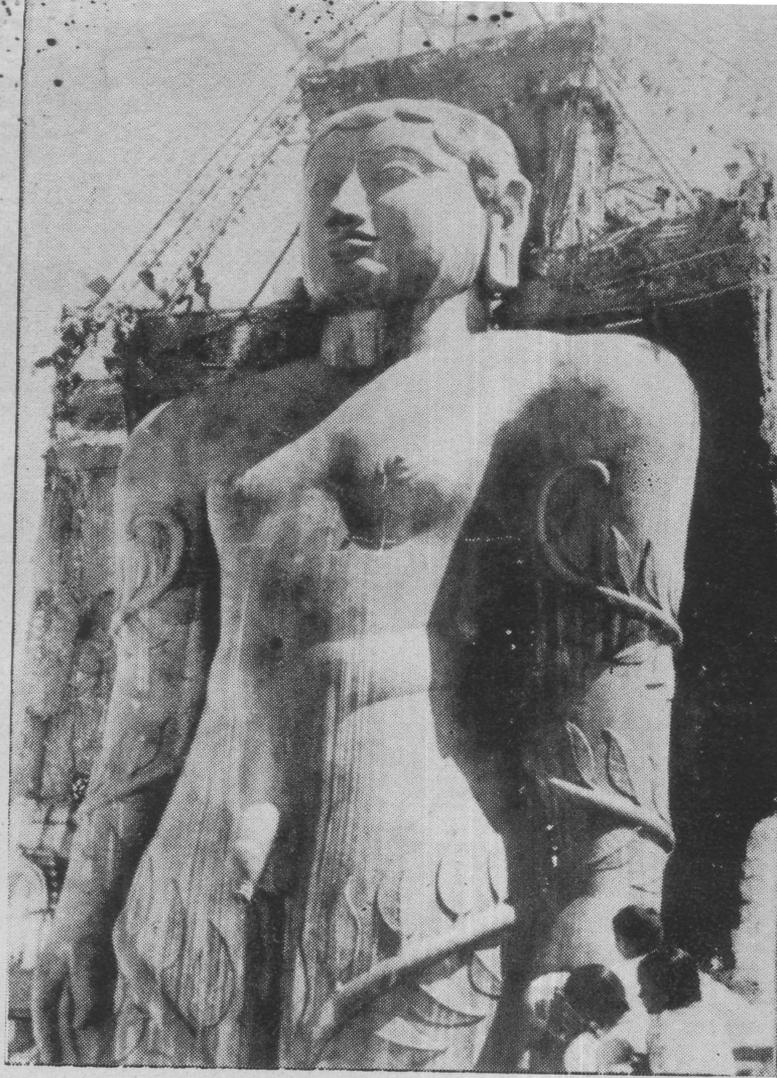
यह अन्तहीन प्रश्नमाला मेरी चेतना के स्तरों को चीरती ही चली जा रही रही थी। और मैं उन पाषाण के चरणों को अधिक-अधिक दृढ़ता से अपनी भुजाओं में बाँध कर फफक-फफक कर रोता ही चला जा रहा था, अपने को मिटाता ही चला जा रहा था।

... अचानक अनुभव हुआ, कि मेरे आँसुओं से भीगे, टूटते वृक्ष-तले, उस अविचल पाषाण में कोई कम्पन सरसरा उठा है, और ऐसा लगा कि मेरी भुजाओं में बाँधा वह विशाल चरण हिल रहा है।

... चौक कर मैं उठा और सामने दृष्टि पड़ी :

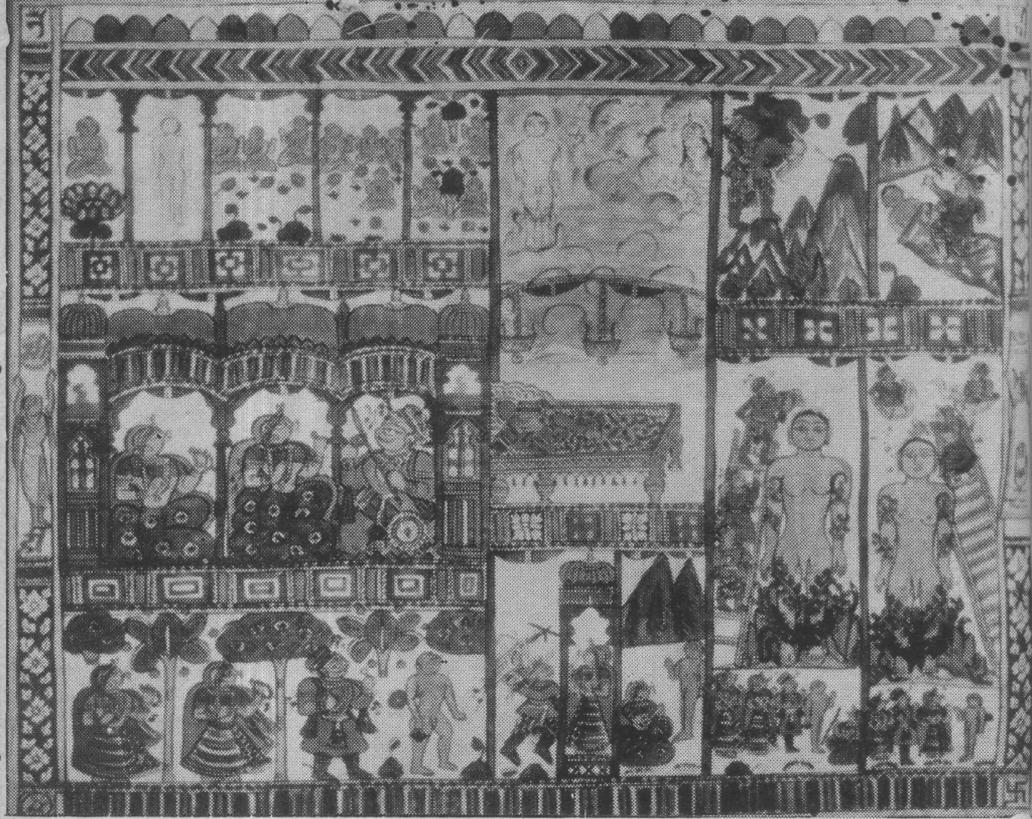
युग-युगों से अचल, कूटस्थ प्रभु का वह प्रकाण्ड चरण उठा और उसने डग भरनी चाही। ... एक नवीन सृष्टि मानो दूर अन्तरिक्ष में से तैरती आयी कि वह उस डग को झेले।

... और किसी ने मेरी आँखों पर एक नरम-नरम गरम-गरम छोटी-सी हथेली रख दी। मेरी नींद खुल गयी। देखा, तो मेरी बगल में सोया घर का शिशु ज्योतिन जाग कर उठ बैठा है, और मुस्कराता हुआ मुझे जगा रहा है। □



### गोम्मटेइवर-महामस्तकाभिषेक

सर्वप्रथम : रविवार, १३ मार्च १८१ ई. / चामुंडराय, दूसरा  
१३९८, तीसरा १६१२, चौथा १६५९, पांचवाँ १६७७,  
छठा १८००, सातवाँ १८२५, नवाँ १८२७, दसवाँ १८७१,  
ग्यारहवाँ १८८७, बारहवाँ १९००, तेरहवाँ १९१०, चौदहवाँ  
१९२५, पन्द्रहवाँ १९४०, सोलहवाँ १९५३, सत्रहवाँ १९६७,  
अठारहवाँ २२ फरवरी १९८१.



## वाहवली-प्रतिमा की पड़ (चित्र-गाथा)

पड़ (पट-चित्रांकण) राजस्थानी लोकचित्रकला की अपनी निजी विशेषता है। 'वाँल हेंगिगज़ ऑफ राजस्थान' के नाम से सारी दुनिया में विख्यात पड़ें न केवल चित्रकला हैं अपितु पड़-वाचन के रूप में ये संगीत, काव्य और नाटक की अद्भुत/असाधारण समन्वित संयोजन भी हैं। श्री जिनेन्द्र कला भारती, भीलवाड़ा द्वारा तैयार यह पड़ वाहवली-प्रतिमा की संपूर्ण निर्माण-कथा प्रस्तुत करने में समर्थ है। महामस्तकाभिषेक १९८१ की समारोह-शृंखला में इस पड़-वाचन के अलावा कला भारती "मानमर्दन" "अस्थिग्राम का तपस्वी" इत्यादि कठपुतली-नाटिकाएँ भी मंचित करेगी। आधुनिक प्रदर्शन-तकनीक से लैस उक्त मंचनों में 'भारती' को अपूर्व सफलता मिली है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

# श्रवणबेलगोल के प्राचीन संदर्भ

डॉ. भागचन्द्र भास्कर

श्रवणबेलगोल प्राचीन जैन तीर्थक्षेत्र है जो कर्नाटक प्रदेश के हासन जिले के समीपवर्ती कटवप्र पर्वत पर स्थित है। गंग, कदंब, राष्ट्रकूट, चालुक्य, होयसल आदि राजवंशों के संरक्षण में इस प्रदेश ने जैन कला और संस्कृति का भरपूर समुन्नयन किया। इनमें गंगवंशीय नरेशों का सर्वाधिक योगदान रहा है।

अनुश्रुति के अनुसार गंगवंश का संव्रध तीर्थकर आदिनाथ के इक्ष्वाकुवंशीय गंगेय से है, जिसकी वंश-परंपरा में जन्मे पद्मनाथ के पुत्र दद्विग और माधव कोंगुणिवर्म प्रथम (१८९-२५० ई.) ने आचार्य सिंहर्नदि की देखरेख में ९६००० संज्ञक गंगवाडि (मैसूर के दक्षिण भाग में स्थित गंगडिकार या गंगवाडिकार) को अपना राज्य बनाया। दद्विग तो शासन-निर्माण काल में ही चल बसा; अतः माधव ही इस राज्य का प्रथम वास्तविक नरेश है।

गंगराज्य के निर्माण में आचार्य सिंहर्नदि की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। श्रवणबेलगोल के समीपस्थ हल्लिग्राम में प्राप्त शिलालेख में उन्हें गंगराज्य का निर्माता कहा गया है। पार्श्वनाथ वसदि में एक स्तंभ पर उत्कीर्ण शिलालेख तथा कल्लूर-गुड्ड (मैसूर) के सिद्धेश्वर मंदिर में प्राप्त शिलालेख भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। ये शिलालेख बारहवीं शताब्दी के हैं, जबकि गंगराज्य दूसरी से ग्यारहवीं शताब्दी तक ही रहा है। संभव है जैन संस्कृति के उद्भावक गंग राजाओं को जन-मानस भूल न सका हो और उनको किसी भी संबद्ध राजा से जोड़ दिया गया हो। ये गंगनरेश राष्ट्रकूट नरेशों के सामन्त रहे हैं और उन्होंने राष्ट्रकूटों का संरक्षण किया है।

गंगवंश की प्रथम राजधानी मैसूरवर्ती पालार नदी के तट पर स्थित कुवलाल (कोलार) थी। बाद में उसे माधव के प्रपौत्र हरिवर्मन ने कावेरी नदी के तट पर स्थित तलवाड में स्थानान्तरित किया और फिर श्रीपुरुष ने मान्यपुर (बंगलौर के समीप) को अपनी राजधानी बनाया। हरिवर्मन के भाई आर्यवर्मन तथा कृष्णवर्मन ने इस वंश की क्रमशः पेरूर और कैवार शाखा का सूत्रपात किया।

दुर्विनीत (४८२-५२२ ई.) गंगवंश का कदाचित् सर्वाधिक शक्तिशाली नरेश था। उसकी शिक्षा-दीक्षा आचार्य देवर्षि पृथ्वीपाद (४६४-५२४ ई.) के सान्निध्य में हुई। श्रवणबेलगोल-शिलालेखों के अनुसार गंग शासनकाल में वीरदेव, वप्पदेव, शिव-वर्मन, यशोधर आदि-आदि अनेक महान् जैनाचार्य हुए हैं।

विद्वान् और शक्ति-सम्पन्न होने के बावजूद उत्तरकाल में दुर्विनीत के उत्तरा-धिकारियों पर चालुक्य नरेशों ने कुछ समय के लिए आधिपत्य जमाया, फिर भी गंगवंश को नामशेष नहीं किया जा सका। लगभग २०० वर्षों तक वह संघर्ष करता रहा। बाद में राष्ट्रकूट और चालुक्यों के बीच हुए आक्रमणों ने गंगनरेश श्रीपुरुष (७२६-७७६ ई.) को शक्ति-केन्द्रित करने में काफ़ी सहयोग दिया। श्रवणबेलगोल प्रशस्ति में इसके शासन-काल में कतिपय आचार्यों का उल्लेख मिलता है। उनमें प्रमुख हैं—प्रभाचंद्र, विमलचंद्र, परवादिमल्ल, अनन्तवीर्य, विद्यार्षि। इन आचार्यों ने कर्नाटक प्रदेश में रहकर जैन साहित्य और संस्कृति का भरपूर पल्लवन किया।

श्रीपुरुष के बाद शिवमार द्वितीय सैगात (७७६-८१५ ई.) हुआ, जिसने श्रवणबेलगोल की चंद्रगिरि पहाड़ी पर एक सुंदर जिनालय बनवाया था। उत्तरकाल में शिवमार को राष्ट्रकूट नरेशों से पराजय का मुंह देखना पड़ा; फलतः वह उनका सामन्त बन गया। बाद में गंगवंश ने पुनः उत्कर्ष किया। राचमल्ल सत्यवाक्य प्रथम (८१५-८५३ ई.) ने बाण नरेश को पराजित किया, पल्लव नोलम्बों तथा राष्ट्रकूटों के साथ पारिवारिक संबंध स्थापित किये। इन लोगों ने मिलकर बेंगी के चालुक्यों से संघर्ष किया। राष्ट्रकूट इन गंगनरेशों को अपना अधीन सामन्त समझते थे; पर तथ्य यह है कि गंगवंश ही राष्ट्रकूटों के संरक्षक सिद्ध हुए हैं।

गंगराज मारसिंह (९६१-९७४ ई.) बड़ा प्रतापी राजा था। उसने राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज तृतीय के लिए अनेक राज्य जीते तथा जिन-भक्तिवश अनेक जैन मंदिर बनवाये। मारसिंह के बाद उसके पुत्र राचमल्ल चतुर्थ (९७६-८४ ई.) के मन्त्री तथा सेनापति चामुण्डराय के कारण इस वंश ने अमरता प्राप्त कर ली। गंग इतिहास के लिए यद्यपि यह स्वर्णकाल था, फिर भी चामुण्डराय की वीरता और भक्ति ने गंगराज्य के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ दिया। वह भट्टारक अजितसेन तथा आचार्य नेमिचंद्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती का शिष्य था। उसका घर नाम 'गोमट्ट' था, इसलिए उसी के नाम पर 'गोमट्टसार' ग्रन्थ लिखा गया तथा उसके द्वारा स्थापित भगवान् बाहुवली की विशालकाय प्रतिमा का नाम भी 'गोमट्टेश्वर' पड़ गया। गोमट्ट स्वयं विद्वान् था और विद्वानों का आश्रयदाता था। उसके ग्रन्थ वीर मार्तण्ड (गोमट्टसार की कन्नड़वृत्ति), तत्त्वार्थ राजवार्तिक संग्रह, चरित्रसार एवं त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित उसकी विद्वत्ता तथा जैनधर्म-परायणता के प्रतीक हैं।

अनुश्रुति के अनुसार भरत ने बाहुबली की राजधानी पोदनपुर में बाहुबली की शरीराकृति के अनुरूप ५२५ धनुष ऊँची प्रतिमा स्थापित करायी थी। कालान्तर में यह प्रतिमा कुक्कुट सर्पों से आच्छादित हो गयी। उसे ननिगोपाल मजूमदार और टॉम्सन जैसे दुस्साहसी पुरातत्ववेत्ता की अभी भी प्रतीक्षा है जो पौराणिक आख्यान को इतिहास और संस्कृति की कसौटी पर कसकर सामने ला दे।

यह पोदनपुर आंध्र प्रदेश के मंजिरा और गोदावरी नदियों के संगम से दक्षिण में स्थित है। निजामाबाद का समीपवर्ती आधुनिक 'बोधिन' ही पोदनपुर है। आचार्य जिनसेन से इसी पोदनपुर-स्थित भगवान् बाहुबली की मूर्ति का आकर्षक विवरण सुनकर चामुण्डराय की माता ने उसके दर्शन करने की इच्छा व्यक्त की तथा चामुण्डराय ने बाण-प्रयोग कर मूर्ति का उद्घाटन किया। गुल्लिकाअज्जी की कृपा से उस मूर्ति का मस्तकाभिषेक भी हो सका। श्रवणबेलगोल में प्राप्त अनेक शिलालेख इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। चामुण्डराय ने इसी पहाड़ी के नीचे एक नगर बसाया और गोम्मटेश्वर मूर्ति के लिए ९६ हजार 'बरह' की आय के गाँव दान में दिये। इसी नगर का नाम 'बेलगोल' रखा गया। और यहीं गुल्लिकाअज्जी की मूर्ति भी स्थापित की गयी।

चन्द्रगिरि (चिक्कवेट्ट) इतिहास की दृष्टि से अद्वितीय स्थान है। भारत के प्रथम चक्रवर्ती चन्द्रगुप्त मौर्य की यही साधना-भूमि रही है। यहीं खड़े होकर चामुण्डराय ने दक्षिण दिशा की ओर बाण-प्रयोग किया था। इस पर्वत पर निर्मित चन्द्रगुप्त वसति प्राचीनतम स्मारक है, जिसमें तीन साधारण विमान-मंदिर बने हुए हैं। इसके अर्धमण्डप का अग्रभाग उत्तरकालीन है। इसके मध्यवर्ती गर्भगृह में पार्श्वनाथ, दक्षिणवर्ती गर्भगृह में पद्मावती तथा वाम भाग के गर्भगृह में कूष्ममाण्डनी देवी की मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित हैं। कहा जाता है, इन मंदिरों का निर्माण चन्द्रगुप्त मौर्य ने कराया था।

विन्ध्यगिरि (दोड्डजेट्ट) अथवा इन्द्रगिरि पहाड़ी (३३४७ फीट ऊँची) पर समतल चतुष्कोण के मध्यभाग में भगवान् बाहुबली की ५७ फीट ऊँची आश्चर्यकारी मूर्ति विद्यमान है, जो ग्रेनाइट चट्टान को काटकर बनायी गयी है। सभी अंगों के अनुपात में सजी सौम्य मूर्ति अप्रतिम कला-कौशल का उदाहरण है। अर्धनिमीलित ध्यानमग्न नेत्र, आकर्षक मुखमण्डल, विशाल वक्षस्थल, स्मित वदन, खड्गासन मुद्रा में निरावरणता, बलिष्ठ स्कन्ध, सुपुष्ट गोल कपोल, भार को सम्हालते हुए-से बृहदाकार नितंब, घुंघराले केश, चमकदार पॉलिश आदि सब कुछ इतनी सुन्दरता और निष्कपटता लिये हुए हैं कि दर्शक दाँतों-तले अंगुली दाबे मन्त्रमुग्ध-सा खड़ा देखता ही रह जाता है। कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थित यह मूर्ति कलाकार की प्रतिमा को

संजोये अपनी अनुपमता को आज भी बनाये हुए हैं। उसकी विशालता, प्रभावोत्पादकता तथा संवेदनशीलता की दृष्टि से मिस्र की रेमरेज और अफगानिस्तान की बुद्ध की मूर्तियाँ भी अतुलनीय हैं। उसकी एकरूपता और संवेदनात्मकता उसके अलौकिक व्यक्तित्व का जीवन्त प्रतीक है। चमकदार पॉलिश में अपनी भव्यता, अपना कला-कौशल और अपनी सुंदरता को छिपाये यह मूर्ति सहस्र वर्षों से वर्षा, आँधी, तूफान, गर्मी आदि के थपेड़ों को सहन करती हुई आज भी नूतनता और अप्रतिमता में अविजित है।

चामुण्डराय ने इस भव्य प्रतिमा का निर्माण अपने चामुण्डराय पुराण (१७८ ई. की रचना के बाद ही कराया होगा; इसीलिए उसमें इसका उल्लेख नहीं किया जा सका। चामुण्डराय के गुरु नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने अपने गोमट्टसार (३९९ ई.) में इसका उल्लेख अवश्य किया है; अतः इस मूर्ति की स्थापना १७८ ई. तथा १९३ ई. के बीच होनी चाहिए। गोविन्द पै तथा नेमिचन्द्र शास्त्री ने ज्योतिष-गणना के आधार पर यह सिद्ध किया है कि इस मूर्ति की प्रतिष्ठापना तिथि १८१ ई. की चैत्र शुक्ला पंचमी, रविवार संवत्सर विभव को हुई होगी। डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन ने भी अभी-अभी अपने लेख में इसी तिथि को पुष्ट किया है; तदनुसार गोम्मटेश्वर बाहुबली का मस्तकाभिषेक इसी वर्ष फरवरी १९ से २५ तक संपन्न होने जा रहा है।

गोम्मटेश्वर मूर्ति की स्थापना के बाद श्रवणबेलगोल नगर और उसकी बस्तियाँ बसायी गयीं, इतना ही नहीं, उसके आसपास के गाँव भी उत्तरकालीन हैं। चामुण्डराय ने बाहुबली के साथ ही उनके भाई भरतेश्वर की मूर्ति का भी निर्माण सन् १२१ में कराया था। कलाकार ने इसे भी शिलाखण्ड काटकर उकेरा था। यह मूर्ति लगभग तीन मीटर ऊँची है। आज वह खण्डित तथा उपेक्षित स्थिति में पड़ी हुई है।

इस प्रकार श्रवणबेलगोल चालुक्य, राष्ट्रकूट, गंग आदि राजवंशों द्वारा संरक्षित और अभिवर्धित रहा है। उसके अनुपम कला-कृतित्व ने उसे विश्व के दर्शनीय स्थलों में अग्रगण्य बना दिया है। □



कहानी

जनेन्द्रकुमार :

बाहुबली

बहुत पहले की बात कहते हैं। तब दो युगों का संधिकाल था। भोगयुग के अस्त में से कर्मयुग फूट रहा था। भोगयुग में जीवन मात्र भोग था। पाप-पुण्य की रेखा का उदय न हुआ था। कुछ निषिद्ध न था, न विधेय; अतः पाप असंभव था, पुण्य अनावश्यक। जीवन बस रहना था। मनुष्य इतर प्रकृति के प्रति अपने आपमें स्वत्व का अनुभव नहीं करने लगा था और प्रकृति भी उसके प्रति पूर्ण वदान्य थी। वृक्ष कल्पवृक्ष थे। पुरुष तन ढाँपने को बत्कल उनसे लेता, पेट भरने को फल। उसकी हर बात प्रकृति ओढ़ लेती। विवाह न था और परस्पर संबंधों में नातों का आरोप न हुआ था। स्त्री, माता, बहन, पत्नी, पुत्री न थी। वह मात्र मादा थी और पुरुष नर। अनेक थलचर, प्राणियों में मनुष्य भी एक था और उन्हीं की भाँति जीता था।

उस युग के तिरोभाव में से नवीन युग का आविर्भाव हो रहा था। प्रकृति अपने दाक्षिण्य में मानो कृपण होती लगती थी। उस समय विवाह ढूँढ़ा गया। परिवार बनने लगे, और परिवारों में समाज। नियम-कानून भी उठे। 'चाहिये' का प्रादुर्भाव हुआ और मनुष्य को ज्ञान हुआ कि जीना रहना नहीं है, जीना करना है। भोग से अधिक — जीवन कर्म है और प्रकृति को ज्यों-का-त्यों लेकर बैठने से नहीं चलेगा। कुछ उस पर संशोधन, परिवर्तन, कुछ उस पर अपनी इच्छा का आरोप भी आवश्यक है। बीज उगाना होगा, कपड़े बनाने होंगे, जीवन-संचालन के लिए नियम स्थिर करने होंगे और जीवन-संवृद्धि के निमित्त उपादानों का भी

निर्माण और संग्रह कर लेना होगा। अकेला व्यक्ति अपूर्ण है, अक्षम है, असत्य है। सहयोग स्थापित करके परिवार, नगर, समाज बनाकर पूर्णता, क्षमता और सत्यता को पाना होगा।

ठीक जब की बात कहते हैं तब व्यक्ति व्यष्टि सत्ता से समष्टि सिद्धि की ओर बढ़ चला था। राजा जैसी वस्तु की आवश्यकता हो चली थी। पर राजा जो राजत्व की संस्था पर न खड़ा हो, प्रजा की मान्यता पर खड़ा हो। यह तो पीछे से कि राजत्व की संस्था बनी और शिक्षा और न्याय विभाग-रूप में शासन में पृथक् हुए। नगर बन चले थे और जीवन-यापन नितान्त स्वाभाविक कर्म न रह गया था। उसके लिए उद्यम की आवश्यकता थी।

□ □

इस भाँति राज्य बना और प्रथम राजा हुए श्री आदिनाथ। उनके दो पुत्र थे, दो पुत्रियाँ। पुत्र भरत और बाहुबली, पुत्रियाँ ब्राह्मी और सुंदरी।

अवस्था के चतुर्थ खण्ड में ज्येष्ठ पुत्र को बुलाकर श्री आदिनाथ ने कहा, 'पुत्र अब तुम यह पद लो। मुझे अब दीक्षा लेनी चाहिये।'

भरत ने कहा, 'महाराज ...'

आदिनाथ ने कहा, 'तुमको पहला चक्रवर्ती होना है। इस राज्य से बाहर भी बहुत प्रान्त हैं, जिनको व्यवस्थित शासन तुम्हें देना है। मैं तो लोगों के मान लेने से उनका मुखिया हो गया था। उनको मुझे राजा कहने में सुख मिला। मैंने कहा, अच्छा; लेकिन तुमको साम्राज्य बनाना है। अपने लिए नहीं, लोगों में एकत्रता लाने के लिए। तुमको विजय-प्रसार का कर्तव्य भी करना होगा।'

भरत ने कहा, 'महाराज आप दीक्षा क्यों लें? मैं विजयध्वज फहरा न आऊँ और अपने को समर्थ न समझ लूँ तब तक आप अपना आशीर्वाद मुझ पर से न उठायें।'

आदिनाथ ने कहा, 'पुत्र, अब समय आता जाता है कि राजा शासक अधिक हो, प्रजा का हमजोली उतना न हो। राजैश्वर्य से युक्त राजा को देखकर प्रजा समझती है कि उसने कुछ पाया है। तब तक उसका चित्त तुष्ट नहीं होता। मैं तो प्रजा के निम्नातिनिम्न जन से अपना हमजोलीपन नहीं तज सकता; किन्तु तुम्हारे लिए यह अनिवार्य नहीं है। तुम राजपुत्र हो। मैं तो साधारण पिता का पुत्र हूँ और जिस पद से शासन की आशा है उसके सर्वथा अयोग्य बन जाना चाहता हूँ। मुझे लोगों के दुःख में जाना चाहिये और मुझे उस मार्ग में से चलकर अपना कैवल्य पा लेना चाहिये।'

भरत ने निरुत्तर होकर सिर झुका लिया।

अगले दिन आदिनाथ ने दीक्षा ले ली। समस्त वस्त्राभरण और नगर त्यागकर वे निर्ग्रन्थ विहार कर गये। और भरत, चुप मन, जय-यात्रा पर चल दिये।

पृथ्वी के छहों खण्डों पर विजय स्थापित कर और बहुभक्ति के मणि-मुक्ता, हय-गज और कन्या-सुन्दरियों की भेंट से युक्त भरत धूम-धाम के साथ नगर को लौटकर आये।

किन्तु जब भरत नगर में प्रवेश करने लगे, तब विचित्र घटना हुई। चक्रवर्ती का शासन-चक्र नगर के भीतर प्रविष्ट नहीं होता था। प्रत्येक द्वार से नगर में प्रवेश करने के यत्न किये गये, किन्तु शासन-चक्र ने साथ न दिया। इस पर लोगों को बहुत अचरज हुआ। तब राजगुरु की शरण में जाकर इसके कारण के विषय में उन्होंने जिज्ञासा की। राजगुरु ने बताया कि इस नगर में एक व्यक्ति है जो अविजित है। उस पर जब तक विजय न पा ली जाए तब तक चक्रवर्तित्व अखण्ड नहीं होता। और उस समय तक यह शासन-चक्र नगर में प्रवेश न करेगा। राज-गुरु ने यह भी बताया कि अभी तक जिन पर किसी ने विजय नहीं पायी है ऐसे व्यक्ति राजकुमार बाहुबली हैं।

भरत ने पूछा, 'गुरुदेव, तब क्या बाहुबली से मुझे युद्ध करना होगा।'

राजगुरु ने समझाया, 'राजन, तब तक चक्रवर्तित्व असिद्ध है।'

भरत ने कहा, 'किन्तु मैं चक्रवर्ती नहीं होना चाहता।'

राजगुरु ने कहा, 'राजर्षि, यह आपकी व्यक्तिगत इच्छा, अनिच्छा का प्रश्न नहीं है। यह राजकारण का प्रश्न है।'

भरत ने कहा, 'गुरुदेव, क्या भाई से भाई को लड़ना होगा?'

गुरुदेव कहा, 'राजन, राजकारण गहन है। राजकरण-धर्मी का कौन भाई है, कौन भाई नहीं है?'

भरत नतमस्तक हुए।

□ □

पाँच युद्धों द्वारा शक्ति-परीक्षण का, निश्चय हुआ। दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध आदि और अन्त में मल्लयुद्ध।

आरंभ के चारों युद्धों में बिना प्रयास बाहुबली ही विजयी हुए। बाहुबली इस विजय से विशेष उल्लसित नहीं दिखायी देते थे, न भरत विशेष उदास। मल्लयुद्ध अन्तिम युद्ध था और उसके समय प्रजा की उत्सुकता इस भाई-भाई के द्वेषहीन युद्ध में बहुत बढ़ गयी थी।

मल्लयुद्ध में कुछ देर के बाद बाहुबली ने भरत को दोनों हाथों पर ऊपर उठा लिया। इस समय दर्शकों के प्राण कण्ठ में आ बसे थे। वे प्रतिपल आशंका करने लगे कि चक्रवर्ती भरत अब धरती पर चित्त आ पड़ते हैं; किन्तु बाहुबली ने धीमे-धीमे अपने हाथों को नीचे किया और भरत पृथ्वी पर सावधान खड़े दिखायी दिये! तदनन्तर नतमस्तक होकर बाहुबली ने दोनों हाथों से अपने बड़े भाई के चरण छुए।

भरत ने भी बाहुबली को अपनी छाती से लगा लिया। कहा, 'बाहुबली, विजयी होओ। मुझे तुम पर गर्व है और मैं तुम्हारी विजय पर हर्षित हूँ। तुम सामर्थ्यशाली बनो।'

बाहुबली ने कहा, 'यह आप क्या कहते हैं? आप ज्येष्ठ हैं, योग्य हैं। और मैं एक क्षण के लिए भी राज्य नहीं चाहता।'

भरत ने कहा, 'भाई बाहुबली, वह तुम्हारा है। तुम उसके विजेता हो, उसके पात्र हो। और मैं अपना हृदय दिखा सकूँ तो तुम जानो मैं कितना प्रसन्न हूँ। तुम राजा बनो, मुझे अमात्य बनाओ, सेनापति बनाओ, अथवा जो चाहो सेवा लो।'

बाहुबली ने हाथ जोड़कर कहा, 'भाई, मुझे राज्य की इच्छा नहीं है। इस विषय में आप राज्य-पालन का कर्त्तव्य मुझ पर न डालें। मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। मुझे राज्य आदि नहीं चाहिये।'

भरत ने बहुत कहा। परन्तु बाहुबली दीक्षा लेकर वन की ओर चले गये। भरत चुपचाप राज्य-रक्षा और राजस्व-पालन में लग गये।

□ □

बाहुबली ने घोर तपश्चरण किया, अति दुर्द्धर्ष, अति कठोर, अति निर्मम। वर्षों वे एक पैर से खड़े रहे। महीनों निराहार यापन किये। सुदीर्घ काल तक अखण्ड मौन साधे रखा। वर्षों बाहर की ओर आँख खोलकर देखा तक नहीं।

उनकी इस तपस्या की कीर्ति दिग्दिगन्त में फैल गयी। देश-देश से लोग उनके दर्शन को आने लगे। भक्तों की संख्या न थी। उनकी महिमा और पूजा का परिमाण न था।

किन्तु बाहुबली भक्तों और उनकी पूजा से विमुख होकर घोर से घोरतर निर्जन दुष्प्राप्य एकान्त में चले जाते थे। एक स्थान पर एक बार अडिग, एकस्थ, एकाकी इतने काल तक खड़े रहे कि उनके सहारे बल्मीक जम गये, बेलें उठ कर शरीर को लपेटने लगीं। उन बल्मीकों में कीड़े-मकोड़ों ने घर बना लिये।

इस कामदेवोपम सर्वांग सुंदर बलिष्ठ पुरुष ने निदारुण काय-क्लेश में वर्ष-के-वर्ष बिता डाले। लोग देखकर हा-हा खाते थे और निस्तब्ध रह जाते थे। उसकी स्पृहणीय काया मिट्टी बनी जा रही थी। स्त्रियाँ उस निमीलित नेत्र, मग्न मौन, शिला की भाँति खड़े हुए पुरुष-पुंगव के चरणों को धो-धोकर वह पानी आँखों में से लगाती थीं। उसके चरणों के पास की मिट्टी औषधि समझी जाती थी, पर वह सब ओर से विलग, अनपेक्ष, बंद आँख, बंद मुख, मलिन देह, कृश गात तपस्या में लीन था।

यह था, पर कैवल्य उसे नहीं प्राप्त हुआ, नहीं हुआ। ज्ञानी लोग इस पर कि-विमूढ़ थे।

□ □

जीवन्मुक्त भगवान् आदिनाथ से लोगों ने पूछा, 'भगवान्, दीर्घकाल से कुमार बाहुबली अतिशय कठोर तपश्चर्या कर रहे हैं। आपको ज्ञात तो है?'

भगवान् बोले, 'हाँ, ज्ञात है।'

'उससे हमारा हृदय काँपता है। आप उन्हें इससे विरक्त करेंगे?' भगवान् ने कहा, 'नहीं। एक निष्ठा के साथ जो किया जाता है, उससे किसी का अपकार नहीं होता।'

लोगों ने पूछा, 'किन्तु भगवान्, कुमार बाहुबली को अब तक कैवल्य-सिद्धि क्यों नहीं हो सकी?'

भगवान् ने कहा, 'यह तुम पीछे जानोगे।'

□ □

भरत राज्य-शासन चला रहे थे। प्रथम चक्रवर्ती भरत के ऐश्वर्य का पार न था। मणि-माषिक-मुक्ता की दीप्ति से उनका परिच्छद जगमग रहता था। उनके नाम का आतंक दिग्दिगन्त में छाया था। सब प्रकार के सुख-विलास और आमोद-प्रमोद के साधन उनके संकेत पर प्रस्तुत थे। और वे अपने अखण्ड निष्कटक चक्रवर्तित्व का उपभोग कर रहे थे।

इसको भी वर्ष-के-वर्ष हो गये।

एक दिन भगवान् आदिनाथ के पास पहुँचकर भरत ने कहा, 'भगवान्, भाई बाहुबली को यह अधिकार मिला कि वह मुझको छोड़कर और राज्य को छोड़कर स्वाधीन रहें और सत्य को पायें। जो मेरे अधिकार में नहीं आता था, जो बाहुबली का हो गया था, उस राज्य को लेने को मैं रह गया। मेरे लिए अस्वीकार करने का तनिक भी अवकाश नहीं छोड़ा गया। मुझे शिकायत नहीं है; लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ, क्या मैं अब दीक्षा नहीं ले सकता?'

भगवान् ने कहा, 'ले सकते हो। अगर सत्य की खोज और सत्य की उपलब्धि राजत्व के द्वारा तुम्हारे निकट अगम्य बन गयी है, तो तुम उसे अवश्य तज सकते हो। और मैं कह सकता हूँ अगम्य बन जाना भी चाहिये। तुम पचास वर्ष से तो ऊपर हुए न?'

भरत संतुष्ट चित्त महलों को लौट आये। और दो दिन बाद घोषणा हो गयी कि चक्रवर्ती अब दीक्षा लेंगे।

नगरवासियों में विकलता छा गयी। साम्राज्य के प्रान्त-प्रान्त से विराँध में अनुनय प्रार्थनाएँ आयीं; किन्तु भरत ने एक प्रतिनिधि सभा को अपना उत्तराधिकार देकर दीक्षा ले ली।

और राज्याभरण उतारते-उतारते मुहूर्त के अंतर में उन्हें निर्मल कैवल्य की उपलब्धि हो गयी।

□ □

लोगों ने क्लिष्ट भाव से भगवान् आदिनाथ की शरण में जाकर पूछा, 'भगवान्, यह क्या बात है? कुमार बाहुबली ने कितना घोर कायोत्सर्ग झेला, कैसा दुर्द्धर्ष तपश्चरण किया, आरंभ से ही उन्होंने सब सुखों का विसर्जन किया, किन्तु उनको कैवल्य प्राप्त नहीं हुआ। और चक्रवर्ती भरत ने जीवन के अधिक भाग में ऐश्वर्य ही भोगा, प्राचुर्य ही देखा, विलास ही पाया। उनको राज-चिह्न उतारते-उतारते परम ज्ञान की प्राप्ति हो गयी? भगवन् बताइये, यह कैसे हुआ? हमारा चिन्त भ्रान्त है।

भगवान् ने सदाय भाव से कहा, 'बाहुबली अविजित है। यह वह बेचारा नहीं भूल सका है।'

लोगों को अनाश्वस्त पाकर खिन्न स्मित के साथ भगवान् ने फिर कहा, 'बाहुबली के मन में से एक फाँस नहीं निकली है। वही एक शल्य उसकी मुक्ति में काँटा है। उसके चित्त में यह खटक बनी हुई है कि जिस भूमि पर वह खड़ा है, वह भरत के राज्यान्तर्गत है।'

□ □

बाहुबली के कानों में जब यह बात पहुँची, मन का काँटा एकदम निकल गया। जैसे एक साथ ही वे स्वच्छ हो गये। आँखें खुल गयीं, मौन मुख मुस्करा उठा। उस मुस्कराहट में मन की अवशिष्ट ग्रन्थि खुल कर बिखर गयी और मन मुकुलित हो गया।

उनके चहुँओर वन में उस समय असंख्य भक्त नर-नारियों का मेला-सा लगा था। उन सबको अब उन्होंने अस्वीकार नहीं किया, उनका आवाहन किया। अपने आराध्य की यह प्रसन्न-वदन-मुद्रा देखकर लोगों के हर्ष का पारावार न था। बाहुबली ने अपने को उनके निकट हर तरह से सुगम बना लिया। कहा, 'भाइयो, तुमने इस बाहुबली को आराध्य माना। उसकी आराध्यता समाप्त होती है। तपस्या बंद होती है। तुमने शायद मेरे काय-क्लेश की पूजा की है। अब वह तुम मुझमें नहीं पाओगे। इसलिए आशा है कि तुम मुझे पूजा देना छोड़ दोगे। और यदि मेरी अप्राप्यता का तुम आदर करते थे, तो वह भी नहीं पाओगे। मैं सबके प्रति सदा सुप्राप्त रहने की स्थिति में ही अब रहूँगा।'

बाहुबली ने निर्मल कैवल्य पाया था। ग्रन्थियाँ सब खुल गयी थीं। अब उन्हें किसी ओर से बंद रहने की आवश्यकता नहीं थी। वे चहुँओर से खुले, सबके प्रति सुगम रहने लगे।

यह देख धीरे-धीरे भक्तों की भीड़ उजड़ने लगी और परम योगी बाहुबली की शरण में अब शान्ति के लिए विरल ज्ञानी और जिज्ञासु लोग ही आते थे।

□ □ □

## भगवान् बाहुबली

भगवान् बाहुबली सभी द्वन्द्वों से परे स्वात्मनिष्ठ, सहज-सिद्ध साधक भाव को उपलब्ध रत्नत्रय वीतराग को साक्षात् सजीव मूर्ति थे।

डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री

यद्यपि जैन पौराणिक साहित्य में बाहुबली का नाम विविध आख्यानमूलक घटनाओं से आवृत है, जिनमें उनकी विशेषताओं को अभिव्यजित किया गया है; तथापि भगवान् बाहुबली न कोई कथा या आख्यान थे, और न कोई घटना। यह सच है कि उनके जन्म तथा निर्वाण को, केवलज्ञान तथा सर्वज्ञता को विविध घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता रहा है जिसके बिना उनका जीवन हमारी कल्पना से परे तथा भावों की पकड़ से बाहर होता, परन्तु यह सत्यार्थ है कि घटनाओं के रूप में जो कुछ कहा जाता है, पढ़ने में आता है भगवान् बाहुबली उसमें समाये हुए नहीं हैं। भावों की गहराइयों में प्रविष्ट, निर्विकल्प समाधि रूप से स्वसंवेद्य समरसता का संवेदन करने वाला योगी ही उनकी यथार्थता, वास्तविकता से परिचित हो सकता है। उसकी निर्विकल्प अनुभूति में जो स्वारस्य समाहित होता है, उस ज्ञानदशा में ही उसे परमात्मा का दर्शन होता है और उसके दर्शन, अवलोकन में ही परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है। भगवान् बाहुबली सभी द्वन्द्वों से परे, स्वात्मनिष्ठ, सहज सिद्ध-साधक भाव को उपलब्ध, रत्नत्रय-वीतराग की साक्षात् सजीव मूर्ति थे।

भारतीय साहित्य में ही नहीं, विश्व-साहित्य में भी बाहुबली जैसा व्यक्ति लक्षित नहीं होता। उनका जन्म व्यक्ति के रूप में ही हुआ था। 'पुरुष' अभिधान उनके लिए ही सार्थक था; क्योंकि पुरुषार्थ की यात्रा में वे अपने को व्यक्त करते गये, व्यक्तित्व पूर्ण रूप से तब तक व्यक्त होता गया, जब तक भगवान्-रूप पूर्ण व्यक्तित्व प्रकट नहीं हुआ। द्रव्य-रूप से प्रत्येक पदार्थ में अव्यक्त सत्ता का अस्तित्व है जो ऊपर से लक्षित नहीं होता, उसकी वास्तविकता को जो पर्याय में प्रकट करता है यथार्थ में वही व्यक्ति है। शक्ति-रूप से पदार्थ अनन्तता का धनी है, किन्तु व्यक्त रूप से अनन्तता का प्रकाश पर्याय में आलोकित नहीं हो रहा है। जो उसे पर्याय में प्रकाशित कर लेता है, उसका पुरुषार्थ तथा पुरुष होना सफल है। इस प्रकार अन्तर्हित शक्ति की व्यक्तता ही परमार्थतः सच्चा व्यक्तित्व है। बाहुबली ने अपने सच्चे व्यक्तित्व को प्रकाशित किया था, हम भी उसे प्रकाशित करना चाहते हैं इसलिए भगवान् बाहुबली का जय-जयकार करते हैं। अन्य कोई प्रयोजन नहीं है।

पुराण तथा कथा-साहित्य में जो आख्यान उपलब्ध होते हैं उनके अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि घटनाओं में संवलित उनका व्यक्तित्व विरोधाभासों

का अनुपम निदर्शन है। भगवान् के रूप में प्रसिद्ध होने वाले विरोधाभासों से भरित ऐसा व्यक्तित्व हमारी दृष्टि तथा कल्पना में आज तक नहीं आया है। भाइयों का परस्पर श्रुद्ध तो एक साधारण घटना है। भूमि, राज्य, सत्ता व पद को लेकर अत्यन्त प्राचीनकाल से युद्ध होते चले आ रहे हैं। उनमें कोई विशेष बात नहीं है; किन्तु व्यक्ति के चरित के मूल में विरोधाभास होना अपना कुछ विशिष्ट अर्थ रखता है। एक ओर चक्रवर्ती राजा भरत हैं, दूसरी ओर पौदनपुर-नरेश बाहुबली हैं। दोनों एक ही पिता की सन्तानें हैं। दोनों ही धीर-वीर, गम्भीर और बलशाली हैं। भरत यशस्वी हैं। उनके नाम से इस देश का भारतवर्ष नाम प्रचलित हुआ। वे इस अव-सर्पिणी काल के आदि युग के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट थे; किन्तु बाहुबली उनसे किसी भी प्रकार कम नहीं थे। बाहुबली की गणना प्रथम कामदेव के रूप में की जाती है। क्या सौन्दर्य, क्या पराक्रम, क्या तप-त्याग और क्या स्थिरता, धीर-वीरता सभी में बाहुबली का प्रकर्ष अतुलनीय था। उन दोनों में परस्पर अत्यन्त स्नेह व भ्रातृत्व था; फिर भी, दोनों में तुमुल युद्ध हुआ। युद्ध का एक मात्र कारण था— आधिपत्य की भावना। बाहुबली स्वाभिमानी थे। इसलिए उन्होंने निःशंक हो कर कहा—“भरत मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, इसलिए उनके चरणों में मेरा मस्तक झुक सकता है; किन्तु पिता से प्राप्त विरासत को छोड़कर उनकी अधीनता स्वीकार करूँ? यह किस प्रकार सम्भव है। इतने बड़े साम्राज्य के स्वामी होकर भी वे असन्तुष्ट हैं। यदि प्रभुता का अहंकार है तो मैं शक्ति-परीक्षण के लिए तत्पर हूँ।” बाहुबली अपने राज्य से सन्तुष्ट हैं, किन्तु भुजाओं में बल होते हुए अपने राज्य को बिना किसी प्रतिरोध के उसका ऐसे ही समर्पण कर देना प्रकृति तथा नीति के प्रतिकूल है; अतएव दोनों में द्वन्द्व-युद्ध होता है। बाहुबली को क्षण-भर के लिए ऐसा प्रतीत होता है मानो मानवीय स्वतन्त्रता का अपहरण किया जा रहा हो। इसलिए पूर्ण निर्भय हो अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ प्रतियोगिता के समर में बाहुबली को उतरते देर नहीं लगी। क्रमशः दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध, और मल्लयुद्ध तीनों में बाहुबली अपराजेय रहे। भरत से अधिक बलशाली और उन्नतकाय बाहुबली सभी भौतिक द्वन्द्वों को पराजित कर स्वयं पराजय का अनुभव करने लगते हैं। यह बाहुबली के चरित की महान् विशेषता है जो अन्य चरितों में लक्षित नहीं होती। पराजित ज्येष्ठ भ्राता के उदा-सीन मुख का अवलोकन कर खेद-खिन्न हो बाहुबली कहते हैं—“राज्यसत्ता की आकांक्षा ही सबसे बड़ा दुःख है। इस धरित्री-रूपी वेश्या का सम्पूर्ण उपभोग आज तक कौन कर पाया है? धिक्कार है ऐसी राज्य-सम्पदा को।”

भरत और बाहुबली दोनों का चरित विरोधाभासों से भरित आस्था की भाँति अडिग है। भरत चक्रवर्ती अवस्था में, राज्य में, सैन्य में तथा लोक-व्यवहार में ज्येष्ठ होने पर भी बाहुबली को पराजित करने में समर्थ नहीं होते। बाहुबली

कनिष्ठ होने पर भी न्याय-नीति, पराक्रम व चारित्र्य में अपनी ज्येष्ठता सिद्ध करते हैं। बाहुबली में अनेक विशेषताएँ होने पर भी मान-अभिमान बना ही रहता है, अहंकार के शिखर से वे तभी नीचे उतरते हैं जब उन्हें आत्मस्वरूप का भान होता है और जगत् तथा जीवन निःसार व तुच्छ प्रतिभासित हो जाता है। जैसे ही उनके भीतर ज्ञान और वैराग्य की शक्ति प्रवाहित होती है, वैसे ही वे राज्य की ओर से मुँह मोड़ लेते हैं; एक विज्ञानघन, ज्ञानानन्द, चित्त्वमत्कार, सच्चित् ज्ञाता-दृष्टा जायकभाव की शरण में चले जाते हैं। यहीं से बाहुबली के व्यक्तित्व के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।

कथाओं में बाहुबली का जीवन अन्तर्विद्रोहों से संकुल है। घटनाओं में उन्हें उजागर करने का बहुआयामी प्रयत्न किया गया है; किन्तु उनका व्यक्तित्व इतना विशाल व व्यापक है कि उसे हम मात्र कथाओं और घटनाओं में ही नहीं खोज सकते हैं। वे आत्मानुसन्धान की गहरी प्रक्रिया में प्रविष्ट हैं; इसलिए हमें भगवान् बाहुबली का वास्तविक कथा-सूत्र वहाँ ढूँढना चाहिये जिससे उनका निर्माण हुआ।

बाहुबली की जीवन-रेखा की यह एक विलक्षणता है कि महापुरुष होने पर भी उनका जन्म सामान्य पुरुष की भाँति हुआ था। भरत और बाहुबली दोनों चरम शरीरी तद्भव मोक्षगामी थे; किन्तु उनके बहिरंग जीवन में कितना अन्तर था! बाहर में हमें चाहे जितना अन्तर दिखलायी पड़ता हो, यह भी लगता हो कि इन महापुरुषों में साधारण लोगों की भाँति क्रिया-कलाप रहे; परन्तु वास्तविकता यह है कि कथाओं में सामान्य पुरुष से लेकर वे महापुरुष तथा भगवान् कैसे बने? यह बताने के लिए घटित घटनाओं में से कतिपय चित्रों को अंकित किया, विकास-क्रम बतलाया। यथार्थ में उन्होंने अपने भीतर विराजमान भगवान् सिद्ध परमात्मा को सतत पुरुषार्थ व अपूर्व आत्मोन्नति के द्वारा अभिव्यक्त किया—यही उनका सच्चा व्यक्तित्व था।

कथानकों तथा घटनाओं में तो कई तरह के विरोधाभास व विरोध लक्षित होते हैं; क्योंकि भिन्न-भिन्न पाठकों के दृष्टिकोण अलग-अलग हो सकते हैं, परन्तु व्यक्तित्व के अध्ययन में सभी प्रकार से उनकी विशिष्टता ही परिलक्षित होती है। अतएव हमारे अध्ययन का वही केन्द्र-बिन्दु होना चाहिये।

बाहुबली इस अवसर्पिणी काल के प्रथम भगवान् हुए। यद्यपि घटना की दृष्टि से ऋषभदेव का जन्म पहले हुआ था। वे भरत और बाहुबली के पूज्य पिता थे। इतना ही नहीं, केवलज्ञान भी उनमें प्रथम प्रकट हुआ था; परन्तु त्रिलोक-पूज्य तीर्थंकर ऋषभदेव के मुक्त होने के पूर्व ही भगवान् बाहुबली को निर्वाणपद की प्राप्ति हुई। इसलिए चक्रवर्ती भरत ने भगवान् बाहुबली की प्रतिमा का प्रथम निर्माण

कराया। बाहुबली जैसे विशाल, उन्नत, दीर्घ तपस्वी, ज्ञान-वैराग्यनिष्ठ थे, उनकी प्रतिमा का भी उसी भव्य रूप में अंकन कराया गया।

काल की धारा में अवसर्पिणी या उत्सर्पिणी में तीर्थंकर चौबीस ही होते हैं, किन्तु भगवान् अनन्त हो सकते हैं। तीर्थंकर के पहले ही भगवान् हो सकते हैं और तीर्थंकर के पश्चात् भी भगवान् हो सकते हैं। जो सच्चे अविनाशी सुख को प्राप्त कर लेते हैं, समस्त कर्म-क्लेशों का क्षय कर देते हैं, उनको भगवान् कहते हैं। बाहुबली ऐसे ही भगवान् थे। वे पौराणिक कथानकों में ही प्रतीकरूप नहीं हैं, उन की कथा जहाँ प्रतीक है वहाँ वे स्वयं ही त्याग-तपस्या के प्रतीक हुए हैं।

भगवान् बाहुबली की तपस्या का मूर्तिमान् चित्रण है—श्रवणबेलगोल के विन्ध्यगिरि पर। ज्ञानानन्दरस में लीन, निर्विकल्प आत्मसमाधि में मग्न, स्वयंभोध-समाधि को उपलब्ध ऐसी स्थिर मुद्रा में चित्रित दीर्घतपस्वी भगवान् बाहुबली के चरणों के आस-पास मिट्टी जम गयी, सर्पों और कीमकों ने बॉमियों का निर्माण कर लिया, शरीर पर बेलें लिपट गयीं, किन्तु ध्यानावस्थित योगी अपने आत्मस्वभाव में ऐसे जम चुके थे, स्थिर हो गये थे कि समय-मात्र के लिए भी च्युत नहीं हुए—यही उनके व्यक्तित्व की सर्वोच्च उपलब्धि थी और इसीलिए वे भगवान् कहलाये, हमारे पूज्य आराध्य बने। □



विजय : किस पर

यह तो विजय नहीं है  
पुनः शत्रु यह जग जाएगा,  
आज नहीं तो कल यह काँटा  
फिर-फिर चुभ जाएगा।  
वैसे भी यह युद्ध नहीं था।  
मात्र युद्ध का भ्रम था,  
भीतर शत्रु, युद्ध बाहर था  
क्या कौशल, क्या भ्रम था ?  
यद्यपि यह मानव दिखता  
मिट्टी का एक खिलौना,

इससे अधिक किन्तु वसुधा पर  
और कौन अनहोना ?  
कोई रहे रहस्य, अनावृत्त  
उसको यह कर सकता,  
यान बना निस्सीम गगन में  
पंछी-सा फिर सकता।  
इसका पौरुष है अजेय  
इसका मद्दु मादक स्वर है,  
किन्तु इसकी एक विवशता  
क्षणभंगुर : नश्वर है।

□□

—मिथीलाल जैन

## अरिष्टनेमि की वापसी

दो देशों के बीच हुए आज तक के तमाम युद्ध सामूहिक रहे हैं। उनका इतिहास लाखों लोगों के खून से लिखा गया है; किन्तु बाहुबली और भरत ने संभवतः पहली बार इस धरा पर युद्ध को व्यक्तिगत बनाया है। युद्ध व्यक्तिगत होते ही अहिंसक हो जाता है; उसकी उपलब्धि लोकोत्तर हो जाती है।

—डॉ. प्रेमसुमन जैन

चौपाल लोगों की भीड़ से भर गया है। बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री, पुरुष सभी किसी आकर्षण में खिंचे चले आ रहे हैं। सबकी निगाहें टिकी हैं—चौपाल के चबूतरे पर बैठे मूर्तिकार अरिष्टनेमि के दमकते चेहरे पर। कंधे पर एक लम्बा-सा थैला लटकाये, हाथ में गोम्मटेश्वर बाहुबली की पाषाण-मूर्ति लिए अरिष्टनेमि चबूतरे के पेड़ की छाया में बैठा सुस्ता रहा है। अभी-अभी वह श्रवणवेलगोल में आयोजित भगवान् बाहुबली के महामस्तिकाभिषेक का दर्शन कर गाँव लौटा है और उनके बीच घिर गया है, जिनकी आँखें इस समारोह के दर्शन का लाभ नहीं ले सकी हैं। ऐसे कितने ही अकिंचन लोगों की आँखें बना हुआ है यह अरिष्टनेमि, जो दूर-दूर की खबरें लाकर उन्हें सुनाता है। कुछ इस ढंग से वह कहता है कि लोग सुनते नहीं अपितु खबरों के दृश्य को साक्षात् देखने लगते हैं।

“बोलो न अरिष्ट भाई, यह तुम्हारे हाथ में किसकी मूर्ति है? और कहाँ से उठा लाये? इस बार तो तुमने यात्रा में कुछ अधिक ही समय लगा दिया?”

अरिष्टनेमि ने देखा उसका बालसखा जग्गू बड़ई जिज्ञासाओं से भरा एक-टक उसे ताक रहा है। इसे सब बताना ही होगा। यह अनपढ़ है; किन्तु श्रोता ऐसा कि बाल-की-खाल निकाल ले। तब तक पूछता रहेगा, जब तक बारीक-से-बारीक बात यह समझ न ले।

“हाँ जग्गू भाई, इस बार चार माह में लौट रहा हूँ। दक्षिण भारत की यात्रा पर चला गया था। मेरे हाथ में जो यह मूर्ति देख रहे हो यह भगवान् बाहुबली की है। कर्नाटक के एक गाँव श्रवणवेलगोल की एक पहाड़ी पर चट्टान काट कर यह बनायी गयी है।

‘अच्छा, अरिष्ट दादा, तो तुम वहीं कारीगरी का काम करने लगे थे इस-लिए गाँव नहीं आये।’

‘अरे चुप रह परमा, तुझे तो हर जगह मजदूरी दिखती है। कुछ तो ज्ञान-धरम की बातें सुनने दे।’ जग्गू ने उसे टोक दिया।

‘जगू, परमा की कभी-कभी छठी इन्द्री बोल जाती है। मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ कि मैं इस मूर्ति के निर्माण का भागी होता; किन्तु वहाँ सुनने को मिला कि वास्तव में बाहुबली की इस प्रतिमा का मूर्तिकार कोई अरिष्टनेमि था। आज से एक हजार वर्ष पहले उसने इसे बनाकर अपनी कला को धन्य किया था।’

‘अच्छा, एक हजार वर्ष हो गये इस प्रतिमा को बने? तब तो इसकी कथा और भी पुरानी होगी। अरिष्ट भाई, तुम तो उस कलाकार के नामराशि हो। तुमने सब जान लिया होगा। हमें पूरी कथा बताओ। प्रारम्भ से लेकर इस आयोजन तक की, जहाँ से तुम लौट रहे हो।’

‘हाँ भाई जगू, अब कथा ही तो शेष रही है। सब सुनाता हूँ; किन्तु इन देवेन्द्र सेठ को कह देना—नाराज न हों। मैंने जो जाना/समझा वही कहूँगा। इनके पोथी-पुराणों में क्या लिखा है, मुझे पता नहीं?’

‘जगू भैया, कैसी बात करते हो। तुमसे कौन-सा पोथी-पुराण छुपा है और फिर तुम तो कलाकार हो। कहाँ से क्या-क्या बातें निकाल कर पत्थर पर उकेर देते हो, क्या हमने देखा नहीं है। सुनाओ पूरी स्वतन्त्रता से सुनाओ। हम भी भगवान् के सम्बन्ध में दो आखर जान लेंगे।’ देवेन्द्र सेठ दुकान बन्द कर आज इसी के लिए आये थे।

‘भगवान् ऋषभदेव के पुत्रों में दो पुत्र प्रमुख थे—भरत और बाहुबली। ऋषभ-देव ने अपने राज्य का वितरण करते समय भरत और बाहुबली को अलग-अलग प्रदेशों का राजा बनाया। भरत अयोध्या पर राज्य करते थे और बाहुबली तक्षशिला के पास पौदनपुर के राजा थे। दोनों भाइयों में बड़ी प्रीति थी। बहुत आदर था।

‘कुछ समय बाद भरत को चन्द्ररत्न की प्राप्ति हुई। जिसे चक्र की प्राप्ति होती है उस राजा को सभी राजाओं को अपने वश में करने के लिए दिग्विजय करनी पड़ती है। वह छह खण्डों का सम्राट् होता है। भरत ने भी अपने प्रताप से सभी राजाओं को जीत लिया, किन्तु फिर भी दिग्विजय से वापिस लौटने पर चक्र उसके वश में नहीं हुआ। तब मंत्रियों ने कहा कि अभी आपके भाई बाहुबली को जीतना बाकी है। वे आकर आपको प्रणाम करें तभी आप चक्रवर्ती राजा कहलायेंगे।

‘भरत ने बाहुबली के पास संदेश भेजा कि तुम आकर मुझे प्रणाम करो और मुझे अपना राजा मानो। बाहुबली ने कहलाया कि बड़े भाई के नाते आपको बार-बार प्रणाम है; किन्तु पिता के द्वारा दिया गया राज्य तो स्वाधीन ही रहेगा। वह जनता की सम्पत्ति है जिसकी रक्षा करना प्रत्येक राजा का कर्त्तव्य है।

‘अरिष्ट दादा, लगता है कि बाहुबली तो गांधी बाबा के पूर्वज थे। गांधी:

ने जैसे स्वाधीनता की रक्षा के लिए प्राण दे दिये, किन्तु किसी के साम्राज्य को नहीं पनपने दिया, वैसे ही बाहुबली ने एक सम्राट् को चुनौती दी।

‘परमा, तुम ठीक सोचते हो। स्वाधीनता बहुत बड़ी चीज होती है। रामायण, महाभारत और न जाने पुराणों की कितनी लड़ाइयाँ इसी स्वाधीनता के लिए लड़ी गयी हैं। दो भाइयों के बीच धरती के टुकड़े के लिए लड़ाई नहीं होती जगू, स्वतन्त्रता, स्वाभिमान और मर्यादा की रक्षा के लिए संघर्ष होता है। वही भरत और बाहुबली के बीच हुआ।

हाँ अरिष्ट भाई, उन दोनों के बीच फिर कितने वर्ष युद्ध हुआ? बहुत नुक्सान हुआ होगा दोनों ओर?’

‘कहाँ जगू भाई, ऐसा हुआ होता तो आज हम उनको याद करने क्यों बैठते? जानते हो, जब भरत और बाहुबली की सेनाएँ भिड़ने को आमने-सामने खड़ी हो गयीं तो चौथी शताब्दी का एक कवि कहता है कि बाहुबली ने भरत से कहा कि ‘हे चक्रवर्ती, सम्राट्पने के लिए लाखों लोगों के वध से क्या फायदा? हार-जीत का निर्णय हम दोनों आपस में लड़ कर कर लेते हैं।’

कितनी बड़ी बात थी बाहुबली की। देश की स्वाधीनता की रक्षा और देशवासियों के प्राणों की रक्षा इन दोनों का निर्वाह करना तो कोई बाहुबली-जैसे राजा से सीखे। दो देशों के बीच हुए आज तक वे तमाम युद्ध सामूहिक रहें हैं। इतिहास लाखों लोगों के खून से लिखा गया है; किन्तु बाहुबली और भरत ने संभवतः पहली बार इस धरा पर युद्ध को व्यक्तिगत बनाया है। युद्ध व्यक्तिगत होते ही अहिंसक हो जाता है। उसकी उपलब्धि लोकोत्तर हो जाती है।

क्यों दादा, इस निर्णय के बाद भरत और बाहुबली में अच्छी तलवारबाजी हुई होगी? कौन अधिक घायल हुआ?’—परमा ने बाहें फड़काते हुए पूछा।

‘नहीं बेटे, वे तलवार से नहीं लड़े। तलवार, खून के प्यासे पागल बुद्धिबालों का हथियार है। भरत और बाहुबली की लड़ाई तो अपने-अपने आदर्शों की थी; अतः उन्होंने हार-जीत के लिए तीन युद्ध तय किये—जल-युद्ध, दृष्टि-युद्ध और मल्ल-युद्ध। किन्तु मुझे लगता है कि इन युद्धों के पीछे भी बाहुबली अथवा मन्त्रियों की बहुत सूक्ष्म दृष्टि थी। वे चाहते थे कि जल-युद्ध में दोनों एक-दूसरे के सिर पर पानी फेंकें। हो सकता है कि जल की शीतलता से उनके दिमाग से युद्ध की गर्मी उतर जाए; सांसारिक अभिमान तिरोहित हो जाए।

जल-युद्ध से ऐसा न हो तो दोनों दृष्टि-युद्ध में एक-दूसरे से आँख मिलायें। बचन से व्यक्ति कुछ भी कहता रहे, किन्तु आँखों की भाषा दिल की भाषा होती

है। आँख मिलाने से शायद युद्ध का उन्माद उतर जाए। दोनों को भगवान् ऋषभ-देव के पुत्र होने का भान हो जाए।

और यदि इन दोनों युद्धों से भी कुछ नहीं हुआ तो फिर मल्ल-युद्ध किया जाए। यह युद्ध दोनों सगे भाइयों के शरीर-स्पर्श का युद्ध था। एक-दूसरे के शरीर छूने से शायद उन्हें अपने माँ-बाप के दूध और खून की एकता का भान हो जाए। ऐसा कुछ भी, किसी एक को भी हो जाए तो इस युद्ध का परिणाम ही बदल जाएगा। और शायद बाहुबली के जीवन में इन तीनों युद्धों से ही सब कुछ बदल गया है।

कथा कहती है कि बाहुबली शरीर से ऊँचे और बलशाली थे इसीलिए भरत उनसे इन तीनों युद्धों में हार गये। अपने से छोटे से पराजय का दुःख भरत सहन न कर सके। क्रोध में आकर उन्होंने बाहुबली पर चक्र का प्रहार कर दिया। सम्राट बनने के आकांक्षी और हारे हुए योद्धा भरत द्वारा युद्ध के नियमों का उल्लंघन करना प्रकृति को सहन नहीं हुआ। जो चक्र समाप्त की रक्षा के लिए शत्रु का सिर काट कर ले आता था, वही चक्र बाहुबली के आगे नतमस्तक हो गया। पुराण कहते हैं कि चक्र कुटुम्ब के लोगों पर प्रहार नहीं करता, शत्रु का नाश करता है। मुझे ऐसा लगता है कि बाहुबली के बदलते हुए जिस हृदय को भरत नहीं देख पाये, उसे चक्र ने देख लिया।

मल्ल-युद्ध में जब बाहुबली ने भरत को अपने हाथों में ऊपर उठा लिया था, तब जीते हुए योद्धा शत्रु के नाते वे उसे नीचे पटक सकते थे, किन्तु उन्होंने बड़े भाई के नाते भरत को धीरे से जमीन पर उतार दिया। यहीं से बाहुबली का शत्रु-भाव तिरोहित हो गया। जीत कर भी वे मर्यादा के रक्षक बने रहे; इसीलिए चक्र ने नीति का पालन करने वाले अशत्रु बाहुबली पर प्रहार नहीं किया; किन्तु इस चक्र की घटना ने बाहुबली की जीवन-दिशा ही बदल दी।

‘अरिष्ट भाई, क्या बाहुबली ने भरत से इस कपट का बदला लिया? भरत की जगह क्या वे चक्रवर्ती बन गये?’ जग्गू बढ़ई ने अपनी कल्पना बौड़ायी।

‘नहीं जग्गू भाई, ऐसा नहीं हुआ। ऐसा होता तो आज बाहुबली इतने विराट् न होते। तुम तो रामायण का पाठ करते हो। जानते हो कि सोने की लंका जीत कर राम ने उसे पुनः रावण के वंशजों को लौटा दिया। इस देश की यही महानता है कि विजयी राजा अपने पास कुछ नहीं रखता। बाहुबली ने भी भारतीय संस्कृति के इस मर्म को छू लिया था। उन्होंने सोचा कि जिस भौतिक सम्पत्ति और धरती के टुकड़े के लिए एक भाई को दूसरे भाई पर चक्र चलाना पड़े, मर्यादा की अवहेलना करना पड़े, ऐसी सम्पत्ति किस काम की। उन्होंने भरत को चक्रवर्ती-पद

सहर्ष लीटा दिम्प और स्वयं लीट कर घर नहीं गये। सब वहीं छोड़ कर वे आत्म-साधना के लिए निकल पड़े।

‘अरिट्ट दादा, बुरा न मानो तो एक बात कहूँ। भरत तो बड़े भाई थे। यह आत्म-साधना का ज्ञान तो उन्हें पहले होना चाहिये था, छोटे भाई बाहुबली को वैराग्य क्यों आया?’ परमसिंह स्कुचते हुए मन की बात कह गया।

‘परमा, तुम तो पागल हो। अरे जब बाहुबली ने भरत की इतनी बातों का बुरा नहीं माना तो मैं तेरी बातों का बुरा क्यों मानूंगा? और रही तेरे प्रश्न की बात, तो सुन! ज्येष्ठता के साथ श्रेष्ठता नहीं जुड़ी हुई है। अच्छाई की फसल किसी छोटी-सी क्यारी में भी उग सकती है और बड़ा मैदान घास-पतवार से भरा रह सकता है। तुझे पता नहीं, इस देश में श्रेष्ठता के शिखर अनुजता ने ही छुए हैं। विष्णु के वावन रूप ने ही सारी पृथ्वी को नापा है। बलराम-कृष्ण, रावण-विभीषण, नन्दिवर्धन-महावीर, देवदत्त-गौतमबुद्ध और न जाने कितने ऐसे उदाहरण हैं, जिनमें छोटे भाई ने श्रेष्ठता को उपलब्ध किया है और बड़े ने उसकी पूजा की है। बाहुबली आज भगवान् हैं और भरत उनके पथ के अनुयायी केवलज्ञान मुनि।’

‘अरिट्ट भाई, तुम्हारी कथा बड़ी अच्छी लग रही है; किन्तु हमने कहीं सुना था कि बाहुबली को केवलज्ञान प्राप्त करने में बहुत समय लगा। उन्हें यह मान था कि मैं भरत की भूमि पर तप नहीं करूँगा; इसीलिए वे सर्पों के देश में जाकर सौ वर्षों तक तपस्या करते रहे। ऐसा क्यों हुआ?’—देवेन्द्र सेठ ने अपने स्वाध्याय का उपयोग किया।

‘बहुत अच्छी जिज्ञासा है तुम्हारी, देवेन्द्र!! कथा में यह सब कुछ हो तो वह इतिहास बन जाए। भरत और बाहुबली में से कोई छोटा-बड़ा नहीं और न ही उनकी बुराइयाँ अन्त तक उनके साथ रहती हैं। यह तो कथाकार का शिल्प है कि वह किन-प्रतीकों के द्वारा अपनी बात श्रोता/पाठक तक पहुँचाता है।

तुमने घुड़दौड़ देखी है। जब दौड़-प्रतियोगिता होती है तो दौड़ने वाले के रास्ते में कई बाधाएँ उपस्थित की जाती हैं। उन्हें पार करना हुआ जो लक्ष्य तक पहुँचना है, वह विजयी घोषित होता है। दूसरों के लिए आदर्श और प्रेरणामयी होता है। यही महापुरुषों की जीवनी के साथ होता है कि हम उन्हें श्रेष्ठतम घोषित करने के लिए उनके रास्ते में क्रोध, मान, माया, लोभ आदि की अनेक बाधाएँ खड़ी कर देते हैं। भगवान् राम सर्वज्ञाता हैं, किन्तु वे यह नहीं जान सके कि सोने का मृग कैसे दौड़ता है। भरत और बाहुबली दोनों केवल ज्ञानी हुए। आत्म-साधना के द्वारा उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया; किन्तु उनकी कथा क्रोध, मान, माया और लोभ की प्रतीक बन गयी। बता सकते हो जगदीश, कैसे यह हुआ?’

‘अरिट्टु भाई, मेरी समझ में तो यह आता है कि भरत द्वारा सारी पृथ्वी को जीतने की इच्छा लोभ को, युद्ध-नीति का उल्लंघन करना माया को, चक्र का प्रहार करना क्रोध को, और बाहुबली द्वारा भरत के राज्य में तप न करने की सोचना मान को प्रकट करने वाली घटनाएँ हैं। मैंने गलत तो नहीं सोचा?’

‘नहीं जग्गू भाई, तुमने ठीक सोचा है। इन चार कषायों पर विजय प्राप्त करके ही तो भरत और बाहुबली केवलज्ञानी बने। इनमें उलझे रहते तो आज उन्हें कौन याद करता? मुझे तो ऐसा भी लगता है कि इस युद्ध द्वारा कथाकार ने और गहरी बात कही है। भरत के पास राज्य-शक्ति और धन-शक्ति दोनों थीं। उसने दोनों का भरपूर प्रयोग कर बाहुबली को जीतने की कोशिश की; किन्तु बाहुबली में जब से अध्यात्म-शक्ति का जन्म हुआ तब से भरत की ये दोनों शक्तियाँ व्यर्थ हो गयीं। बाहुबली की विजय बड़े भाई पर छोटे भाई की विजय नहीं है; अपितु भौतिक शक्तियों पर अध्यात्म-शक्ति की विजय है। बुराई पर अच्छाई, अन्धकार पर प्रकाश की जीत है।

महाभारत की कथा और भरत-बाहुबली के आख्यान का स्वर एक ही है। गीता में कर्मयोग की बात कही गयी है। अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों युद्ध में भाग लेते हैं। दोनों कर्म करते हैं; किन्तु अर्जुन कर्मफल से जुड़े होने के कारण कर्मयोगी बनकर रह जाता है, जबकि श्रीकृष्ण कर्म से ऊपर उठकर कर्म-संन्यासी बन जाते हैं। इस देश में कर्म-संन्यासी को ही सिरमौर माना जाता है। संचय के विपरीत त्याग को ही, बलिदान को ही श्रद्धा अर्पित की जाती है। यही कारण है कि आज लाखों लोग हज़ारों वर्षों से भगवान् बाहुबली के संन्यास के प्रति श्रद्धावन्त हैं।

‘शिल्पी बाबा, तुमने जग्गू ताऊ, परमा चाचा इन सबको भगवान् बाहुबली की कथा तो सुना दी। हमें भी मजा आया; किन्तु यह तो तुमने बताया ही नहीं कि तुम्हारे हाथ में जो यह मूर्ति है यह किसने बनवायी है, कहाँ बनी है और इसमें लताएँ क्यों लिपटी हैं?’

‘अरी छोटी, तू बहुत नटखट है। अरिट्टु भाई को कुछ साँस तो लेने दे। देख नहीं रही है, वे कब से कितनी ज्ञान-ध्यान की बातें सुना रहे हैं। जा, तू उनके लिए कुछ खाने-पीने को ले आ’—जग्गू भाई ने देवेन्द्र सेठ की किशोरी बेटी को डाँटते हुए कहा।

‘अरे नहीं छोटी, मुझे कुछ नहीं चाहिये। ऐसी कथाएँ भरे पेट से नहीं कही जाती और न ऐसी मूर्ति ही गढ़ी जाती है। चल अब तेरी बात ही करते हैं।

‘यह जो तू मेरे हाथ में मूर्ति देख रही है यह भगवान् गोम्मटेश्वर बाहुबली की मूर्ति है। यह तो नकल है असल मूर्ति की। तू असल मूर्ति देख ले तो तेरे

सब खिलौने छूट जाएँगे वहीं रम जाएगी तू। मैं तो पता नहीं कैसे वहाँ से लौट आया तुम सबके पास। शायद इसलिए कि मूर्ति के पास मूर्तिकार की उपस्थिति शुभ नहीं मानी जाती। मैंने वहाँ बड़े-बड़े विद्वानों से पूछा, शिलालेखों में देखा, पहाड़ियों पर खोजा; किन्तु कहीं भी इतनी भव्य और विराट् मूर्ति का निर्माता वह अरिष्टनेमि दिखायी नहीं दिया। लगता है कि कलाकार के विसर्जन पर ही उसकी कला को स्थायित्व प्राप्त होता है।

‘वहाँ सुनने मिला कि आज से एक हजार वर्ष पहले गंगराज के सेनापति चामुण्डराय ने अपने गुरु नेमिचन्द्राचार्य के आदेश से श्रवणबेलगोल की विन्ध्यगिरि पहाड़ी पर बाहुबली की इस मूर्ति का निर्माण कराया था। चामुण्डराय स्वयं सेनापति था और उसने जितने युद्ध लड़े उन सब में वह विजयी हुआ था; अतः उसने सोचा कि ऐसे वीर पुरुष की मूर्ति यहाँ बनवायी जाए जो किसी से पराजित नहीं हुआ। इसके लिए उसे बाहुबली से उपयुक्त और कोई महापुरुष नहीं जँचा। बाहुबली ने सभी गुणों में श्रेष्ठता की ऊँचाई को धारण किया था, अतः उनकी मूर्ति भी उतनी विराट् बनवायी गयी। पहाड़ी के एक ही पत्थर को काट-छाँट कर ५७ फुट की खड़ी मूर्ति बनाना अपने-आप में इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। पहाड़ी की छह सौ सीढ़ियाँ चढ़कर जब इस मूर्ति के चरणों तक कोई पहुँचता है तब उसे लगता है श्रेष्ठता तक पहुँचने में धरातल से कितना ऊपर उठना होता है।

‘और छोटी, जो तुम इस मूर्ति की बाहों पर ये लताएँ तथा पैरों के पास साँपों की बामियाँ देख रही हो ये बाहुबली की उस कठोर तपस्या की साक्षी हैं, जो उन्होंने सौ वर्ष तक की थी। इस बीच वे प्रकृतिमय हो गये थे। प्राणी और बनस्पति का आश्रय किसी का शरीर हो जाए तो इससे बड़ा वात्सल्य और क्या होगा। सौ वर्ष तक वन की लताएँ उनके शरीर पर चढ़ती रहीं, किन्तु वे अपनी तपस्या में लीन रहे। जैसे वे उस समय खुले आकाश के नीचे खड़े थे, वैसे आज भी उनकी मूर्ति के ऊपर कोई छत नहीं है। धूप, पानी, हवा का सामना हजार वर्ष से बाहुबली की मूर्ति कर रही है। पहले बाहुबली ने तपस्या की, अब उनकी मूर्ति साधना कर रही है।

‘तो क्या अरिष्टु भाई, मूर्ति पर वर्षों से कोई आदि नहीं लगती? पक्षी उस पर बैठ कर उसे गंदा नहीं करते?’

‘जगू भाई, यही तो मूर्तिकार की साधना का फल है और मूर्ति का अति-शुभ। पूरी विन्ध्यगिरि काले पत्थर की है; किन्तु यह मूर्ति जैसे बनते समय सफेद थी, वैसे आज भी सफेद है और ठीक भी तो है, जिस बाहुबली ने कर्मों की काई छुटा कर अपनी आत्मा को स्वच्छ, निर्मल कर लिया, उसकी मूर्ति पर अब क्या काई लगेगी? जिन पक्षियों और जीव-जन्तुओं को बाहुबली ने अपने जीवन-भर प्राणदान दिया हो, वे कभी इतने क्रुतघ्न नहीं होंगे कि बाहुबली की निर्मलता को

दूषित करें। वे प्राणी हैं, मनुष्य नहीं।—अरिट्टु भाई ने आज के मनुष्य के स्वभाव पर बहू आये आँसुओं को धीरे से पोंछ लिया।

‘अच्छा दादा, एक बात बताओ। तुम कहते हो कि बाहुबली के शरीर पर वर्षों तक लताएँ फैलती रहीं। फिर इस मूर्ति में केवल उनकी भुजाओं तक ही ही लताएँ क्यों बनी हैं? क्या इसके ऊपर वे नहीं गयीं?’

‘छोटी, तेरी बुद्धि बड़ी तेज है। बिल्कुल ठीक पूछा तुने; किन्तु तू ही सोच कि जिस बाहुबली को बाहुओं के बल से आगे शक्तिशाली सम्राट् भरत नहीं जा सका, उन बाहुओं के ऊपर बेचारी लताएँ क्या जाती? और फिर अगर मूर्तिकार इतना ध्यान न रखता तो ये भगवान् बाहुबली न कहला कर लताबली कहलाते। बुझे पता नहीं, बाहुबली वह होता है जो आत्म-निर्भर होता है, स्वाधीन होता है। किसी के आश्रय में नहीं रहता। बाहुबली की इस भावना को भी कलाकार ने इस मूर्ति में संजोया है। ५७ फुट ऊँची यह मूर्ति है, चारों तरफ से खुली है; किन्तु सूर्य की रोशनी से इस मूर्ति की छाया कभी पहाड़ पर नीचे नहीं पड़ती। मूर्ति की छाया मूर्ति में ही समा जाती है; अतः बाहुबली प्रतिच्छाया के लिए भी किसी के आश्रित नहीं है।

‘अरिट्टु भाई, हमने तो तुमसे सब कुछ सुनकर यहीं तीर्थ कर लिये। वहाँ तक पहुँचने की हमारी सामर्थ्य कहाँ? सुना है, यह जो एक हजार वर्ष में बाहुबली का अभिषेक हुआ है उसमें सब सामर्थ्यवान, बड़े लोग ही पहुँचे हैं। तो क्या जब यह मूर्ति बनी थी तब भी बड़े लोग ही इसका अभिषेक करते थे? हमारे जैसे छोटे मजदूर लोगों का कोई सहयोग नहीं था उसमें?’—जगू बड़ई ने अपनी पीड़ा को दबाते हुए जिज्ञासा प्रकट की।

‘नहीं जगू भाई, न तब छोटे लोग पीछे थे और न आज हैं। तुम्हीं बताओ बाहुबली की कथा के संबन्ध में इतनी जिज्ञासा और इतनी चर्चा करने वाले हम लोग क्या उस आयोजन में सम्मिलित नहीं हैं? हमारी भाव-भक्ति किस यात्रा से कम है? और हमों जैसे लोगों के लिए तो समारोह के आयोजकों ने, आधुनिक बाहुबली एलाचार्य मुनि विद्यानन्द ने जन-मंगल कलश सारे देश में घुमाया था। तुमने भी तो एक दिन की मजदूरी उसमें दान की थी। वही कलश हम सब का सामूहिक मंगल कलश है और बाहुबली से हमारी एक ही प्रार्थना है कि इस विश्व में मंगल-कलश सामूहिक हों, किन्तु युद्ध व्यक्तिगत हो जाए। जैसे सेनापति चामुण्डराय ने बाहुबली के प्रथम अभिषेक में एक वृद्धा और गरीब स्त्री गुल्लिका की कटोरी के जल को आदर प्रदान किया था, उसी प्रकार देश की, बड़े लोगों की खुशहाली की हरेक लहर निर्जन झोपड़ी के दरवाजे तक दस्तक दे यही बाहुबली के चरणों में हमारा वन्दन है।’

इतना कहकर अरिष्टनेमि ने हाथ में ली हुई उस बाहुबली-मूर्ति को उसी चबूतरे के एक पत्थर पर स्थापित कर दिया। अब तक वहाँ जुड़ आयी भक्तों की भीड़ जैसे ही उस मूर्ति की पूजा में लीन हुई, अरिष्टनेमि वहाँ से दूर चला गया। ठीक अपने पूर्वज नामराशि की तरह। □□

## मन-ही-मन चरण छुए

कैसी अद्भुत पुलक है !  
पुरपरमेश्वर  
परमहंस का स्मरण  
देवि पद्मिनी की पूजा  
प्रभु के परम पवित्र चरणाम्बुजों का मृदु स्पर्श !!  
वरपुरुदेव के पुत्र बाहुबली  
आनन्द-भरित जिनका चरित  
कहता हूँ  
सुनें सरल हृदय प्राणी!  
श्वेत कमल से पूर्ण सरोवर  
'बेळगोळ' नाम हुआ इसीलिए,  
आगे चलकर पूरा गाँव कहलाने लगा बेळगोळ  
फिर कुछ आये मुनिवर  
नाम किंचित् बदल गया  
लोग 'श्रमणबेळगोळ' कहने लगे इसे ।  
चामुण्डराय उठे  
उन्होंने गिरि-अंचल को देखा  
और  
छोड़ दिया स्वर्ण-तीर पाषाण पर ।  
शर गरजता-तरजता टकराया  
चट्टानें क्षण-भर में हुई चूर-चूर  
किन्तु यह क्या  
अचल तो अविचल है  
मूर्ति कोई उभर कर ऊपर आयी  
मन संतृप्त हुआ  
पूजा की, मन-ही-मन चरण छुए ।  
प्रचण्ड धूप में जो मुरझाया नहीं  
भूख ने जिसे कभी व्यथित नहीं किया  
गोम्मटप्रभु ऐसे अद्वितीय वीर हैं ।  
शीत में निष्कम्प  
वर्षा में अ-सिक्त

ऐसे हैं गोम्मटप्रभु अप्रतिम  
 सुन्दर/मनोज्ञ/मनोरम/नयनाभिराम ।  
 कमल-सा मुख  
 सबल देह  
 गोम्मटप्रभु इस वसुधरा के शृंगार हैं ।  
 न शयन, न जागरण  
 सर्वथा नीरव, मौन  
 साठ फुट ऊँचा स्फटिकवत्  
 दिगम्बर/विशुद्ध तन ।  
 वर्णन !  
 वे हैं शब्दातीत  
 बर्णन से परे  
 अतः वर्णन है कष्ट-साध्य  
 लक्ष्मण असंभव ही  
 किन्तु गिरि-दर्शन है स्पष्ट साध्य ।  
 उत्कट उल्लासपूर्ण चित्त से  
 चामुण्डराय ने  
 बहुविध वैभव से अलंकृत किया है इस गिरि को  
 प्रतिष्ठित किया है  
 पंचकल्याणक किये हैं  
 पूजा-अर्चना की है  
 अनेक शताब्दियाँ बीती हैं  
 किन्तु  
 मूर्ति का बह ओप  
 बह ओज  
 बह भामण्डल  
 आज भी  
 अमिट है, अक्षर है  
 आज भी  
 एकत्रित हो प्रजाजन  
 भाँति-भाँति  
 पूजा करते हैं  
 उसकी ।

(कन्नड़ से अनूदित, संकलन : डॉ. सिरूर, अनुवाद : डी. एफ. बंदिन)



## बाहुबली

जब मैंने उन्हें अपने कंधों पर उठा लिया,  
जब उन्होंने मुझ पर अपने चक्र का प्रहार किया,  
वही मुहूर्त-क्षण था—सत्य के साक्षात्कार का ;  
'बाहरी आचार का स्खलन नहीं,  
आन्तरिक भाव का बहुमुखी पीड़न ही हिंसा है!'  
आन्तरिक भाव का बहुमुखी  
अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए,  
अपने मन के अंधियारे प्रकोष्ठों में  
बीपक उजालने के लिए,  
अब मैं जंगल के एकान्त में जा रहा हूँ ।  
मैं उदग्र हूँ उस प्रकाश को पा लेने के लिए,  
जो चक्र की चकाचौंध को निष्प्रभ कर देगा,  
वह प्रकाश जो अपनी प्रभा से,  
केवल हृदय और मस्तिष्क को ही आच्छादित न करेगा,  
बल्कि उस कुटिल प्रवंचक अंधकार को भी विदीर्ण कर देगा,  
जो प्रज्वलित दीपक के तल में शरण खोजता है ;  
जो उन दो नग्न चरणों-तले छुपा रहेगा—  
जो चक्रवर्ती की भूमि पर खड़े रहने को लाचार होंगे :  
लेकिन क्या वह प्रकाश भी उसी चक्रवर्ती की देन होगा ?  
... सो तो केवल वे परमपिता तीर्थंकर,  
वे सर्वज्ञ केवलज्ञानी ही जानते हैं ... !



—सहस्रीचन्द्र जैन

में

आह ! यह कैसा संसार है,  
जहाँ भाई को न भाई से प्यार है,  
राज्य ! राज्य !! राज्य !!!  
कैसा है यह राज्य !  
एक राज्य के लिए  
भाई करे भाई से युद्ध  
और बीच की सेना  
मरे कुत्ते की मौत  
नहीं ! नहीं ! नहीं !  
यह कभी नहीं होगा,  
भरत से यह निन्द्य नहीं होगा,  
मन्त्रिवर !  
कहो सेनापति से  
और रुकवा दो रणभेरी  
अब प्रस्थान नहीं होगा पोदनपुर को  
और न होगा भरत चक्रवर्ती ।  
कह दो सेनापति से  
भरत चक्ररत्न के बिना भी जी सकता है ;  
अथवा कह दो बाहुबली से  
वह स्वीकार करे अभी मेरा शासन  
फिर हमेशा चलेगा उसी का अनुशासन  
मैं जीत कर भी हार जाऊँगा  
और राज्य सौंप संन्यस्त हो जाऊँगा ।  
दौड़ पड़े सेनापति  
और सचिव-समुदाय  
स्वामिन् !  
क्या करने जा रहे हैं आप ?  
क्या यह नहीं होगा राज्य को अभिशाप ?  
यहाँ कौन किसका भाई है,  
यह मीमांसा ही कहाँ आंगी है ?  
राजनीति में न कोई छोटा है, न बड़ा है  
वहाँ सिर्फ "मैं/मैं/केवल मैं" ही खड़ा है  
यह मामला आपका नहीं, राज्य का है  
बाहुबली आपका भाई है,  
कोई सम्बन्ध नहीं उससे इस राज्य का है ।  
और भरत हो गये निरुत्तर  
युद्ध करना उनकी विवशता बन गयी  
और राज्य की अपरिहार्यता ।

—कपूरचन्द जैन

## ‘गोम्मट’ : शब्द-कथा

□ डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये

स्व. डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये जैन विद्या के ऐसे मनीषी थे, जिन्होंने जैन दर्शन के अनेकानेक महत्त्वपूर्ण पक्षों का तो गहन और युक्तियुक्त प्रतिपादन किया ही, साथ ही कई सांस्कृतिक गुत्थियों को सुलझाने में भी अपेक्षित रुचि ली। ‘गोम्मट’ शब्द पर कई दृष्टियों से विचार हुआ है। इस संदर्भ में इधर कुछ लेख भी प्रकाश में आये हैं, किन्तु वे इतने गहरे, संतुलित, और तर्कसंगत नहीं हैं, जितना यह लेख जो १९४१ में लेखक ने बम्बई विश्वविद्यालय की ‘स्प्रिंगर रिसर्च स्कॉलरशिप’ की अवधि में तैयार किया था और जो भारतीय विद्या (अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका, खण्ड २, भाग १) में अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ था। हम अपने प्रिय/प्रबुद्ध पाठकों को आज भी ताजा यह लेख संपादित हिन्दी-अनुवाद के रूप में लगभग अविकल दे रहे हैं। हमें आशा है यह उनका ज्ञानवर्द्धन करेगा और एक प्रायः अछूते विषय पर विचारोत्तेजन देगा।

—संपादक

‘गोम्मट’ शब्द दो प्रधान प्रकरणों में आता है। बाहुबली की तीन विशाल मूर्तियाँ, जो श्रवणबेलगोल, कारकल और वेणूर में हैं, आमतौर पर गोम्मटेश्वर या गोमटेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हैं; और ‘पंचसंग्रह’ नामक जैन ग्रन्थ, जो कि नेमिचन्द्र सिद्धन्तचक्रवर्ती द्वारा प्रणीत या संकलित है, साधारणतया ‘गोम्मटसार’ के नाम से पुकारा जाता है। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि यह शब्द दोनों प्रकरणों में द्वितीय नामों में आता है। ये तीन मूर्तियाँ जिस व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं वह भुजबली, दोर्बलि, कुक्कुटेश्वर इत्यादि के नाम से जाना जाता है; और प्राचीन जैन साहित्य, चाहे वह श्वेताम्बर (अभिधान राजेन्द्र) हो या दिगम्बर, कहीं भी वह गोम्मटेश्वर, गोम्मट-जिन आदि नाम से वर्णित नहीं है। इसी प्रकार उस ग्रन्थ की जो ‘गोम्मटसार’ नाम दिया गया है, वह भी उसके विषयों को सूचित नहीं करती, क्योंकि उस ग्रन्थ का सार्थक नाम ‘पंचसंग्रह’ है। श्रवणबेलगोल की मूर्ति इन तीनों मूर्तियों में सबसे पुरानी है और अभी तक जैन साहित्य में या किसी अन्य स्थान पर ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिला है, जो यह प्रकट कर सके कि श्रवणबेलगोल की मूर्ति के स्थापित होने से पहले बाहुबली गोम्मटेश्वर कहलाते थे। इसकी स्थापना के पश्चात् बहुत से शिलालेखीय और साहित्यिक उल्लेख ऐसे मिलते हैं, जिनमें इस मूर्ति को ‘गोम्मटेश्वर’ के रूप में उल्लेख है। श्रवणबेलगोल के बहुत-से शिलालेख इस मूर्ति को गोम्मटदेव, + ईश्वरजिन, + ईशजिन, + ईश-नाथ, जिनेन्द्र, जिनप, + स्वामि, ईश्वर, + ईश्वर स्वामि-जैसे नामों से नामांकित करते हैं और केवल ‘गोम्मट’

के रूप में बहुत ही कम उल्लेख करते हैं। अक्षर-विन्यास से स्वरों में कुछ भिन्नता पायी जाती है, जैसे - गोम्मट, मुम्मट और गोमट, परन्तु शब्द निःसंदेह एक ही है। शिलालेखों में कुछ बिगड़ी हुई शकलें भी मिलती हैं; जैसे - गोमटेश्वर, गुम्मनाथ-स्वामि जो लेखकों की गलतियाँ मानी जा सकती है, लेकिन ग्रन्थ का नाम सब जगह 'गोम्मटसार' है।

अनेक कारणों से 'गोम्मट' शब्द दोनों स्थानों में एक ही जैसी व्याख्या का पात्र है। श्रवणबेलगोल में मूर्ति की यथाविधि प्रतिष्ठा कराने के जिम्मेदार चामुण्ड-राय हैं, जो गंगराजा राचमल्ल (सन् ९७४-८४) के मन्त्री तथा सेनापति थे और टीकाकारों द्वारा उल्लेखित कथा के अनुसार नेमिचन्द्र ने इसी चामुण्डराय के लिए भवला-जैसे प्राचीन ग्रन्थों पर से विषयों का संग्रह करके 'गोम्मटसार' संकलित किया था। यद्यपि निश्चित तिथियाँ प्राप्य नहीं हैं, फिर भी इतना सुनिश्चित है कि नेमि-चन्द्र तथा चामुण्डराय समकालीन थे और मूर्ति का स्थापन तथा गोम्मटसार का संकलन दोनों समकालीन घटनाएँ हैं, जो लगभग एक ही स्थान से संबन्धित हैं; इसलिए हम 'गोम्मट' का जो भी अर्थ लगायें उसकी विशाल/महान् मूर्तिके साथ और प्राकृत-ग्रन्थ के नाम के साथ भी संगति होनी चाहिये।

यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि चामुण्डराय का संबन्ध श्रवणबेलगोल के साथ उसी प्रकार है, जिस प्रकार प्राकृत-ग्रन्थ के साथ है। यदि हम 'गोम्मटसार' की कतिपय अन्तिम गाथाओं को ध्यानपूर्वक पढ़ें, तो एक बात निर्विवाद है कि चामुण्डराय, जो 'वीरमार्तण्ड' की उपाधि के धारक थे, का दूसरा नाम 'गोम्मट' था और वे 'गोम्मटाराय' भी कहे जाते थे। नेमिचन्द्र ने ओजपूर्ण शब्दों में उनकी विजय के लिए कामना की है। इन गाथाओं और उनकी टीका के परीक्षण से यह स्पष्ट होता है कि 'गोम्मट' शब्द अर्थ की कुछ हल्की-सी भिन्न छायाओं में पुनः-पुनः प्रयोग में लाया गया है। मुझे प्रतीत होता है कि शब्द का बार-बार प्रयोग गोम्मट अथवा चामुण्डराय की प्रशंसा करने का दूसरा ढंग है। जिनसेन ने भी वीर-सेन की इसी प्रकार प्रशंसा की है। इस समकालीन प्रमाण के अतिरिक्त सन् ११८० के एक शिलालेख से भी हमें ज्ञात होता है कि चामुण्डराय का दूसरा नाम 'गोम्मट' था। ऐसा लगता है कि यह चामुण्डराय का घरेलू नाम था।

यदि उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कि प्राचीन जैन साहित्य में बाहुबली को गोम्मटेश्वर नहीं कहा गया है और यह शब्द केवल श्रवणबेलगोल की मूर्ति की प्रतिष्ठा के पश्चात् ही व्यवहार में आया है, तो यह बात सरलता से विश्वसनीय हो जाती है कि मूर्ति बतौर गोम्मटेश्वर (गोम्मटस्य ईश्वरः तत्पुरुष समास) 'गोम्मट के देवता' के प्रसिद्ध हुई है; क्योंकि इसे चामुण्डराय ने, जिनका अपर नाम 'गोम्मट' है, बनवाकर स्थापित किया था। बहुत-से ऐसे देवताओं के

उदाहरण मिलते हैं, जिनके नाम मन्दिरों के संस्थापकों के नामों का अनुसरण करते हैं। नीलकण्ठेश्वरदेव, लक्ष्मणेश्वर देव और शंकरेश्वरदेव ऐसे नाम हैं जो कि नील-कण्ठ नामक (शक १०५१) लक्ष्मण और शंकर चर्मनाथ के द्वारा प्रतिष्ठित देवताओं को दिये गये हैं। 'गोम्मटसार' नाम इसलिए दिया गया, क्योंकि यह धवला आदि ग्रन्थों का सार था, जिसे नेमिचन्द्र ने विशेष रूप से 'गोम्मट' चामुण्डराय के लिए तैयार किया था। जब एक बार श्रवणबेलगोल की मूर्ति का नाम 'गोम्मटेश्वर' पड़ गया, तो शनैः शनैः यह नाम कर्मधारय समास के रूप में समझ लिया गया। (गोम्मट्स चासौ ईश्वरः) और बाद में बाहुबली की अन्य मूर्तियों के लिए भी जो कारकल और वेणूर में हैं, यह नाम व्यवहृत हुआ। यह एक तथ्य है कि वे श्रवणबेलगोल की मूर्ति की अनुकृति हैं।



यद्यपि चामुण्डराय के संबन्ध से 'गोम्मट' एक विशेष संज्ञा (निजी नाम) है, फिर भी हम देखते हैं कि इस शब्द का क्या अर्थ है और इसके शाब्दिक ज्ञान पर क्या कोई प्रकाश डाला जा सकता है? हमारे पास इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि 'गोम्मट' अथवा 'गुम्मट' शब्द संस्कृत से निकलता है। 'गोमट' रूप जो श्रवणबेलगोल के देवनागरी शिलालेखों में विशेषतः आता है, वह इसे संस्कृत उच्चारण के निकट लाने का प्रयत्न-मात्र है। भारत की आधुनिक भाषाओं में मराठी ही ऐसी भाषा है, जिसमें यह शब्द प्रायः व्यवहृत हुआ है और अभी इसको व्यवहार में लाया जाता है।

'दृष्टान्त-पाठ' ग्रन्थ के मूल में, जो कि प्रायः शक १२०० का कहा जाता है, 'गोम्मट' शब्द आता है :

वोखटें करीतसातां कव्हणी गोमटेतें न पवे । गोमटे करीतसातां कव्हणी वोखटे यातें न पवे ॥ —दृष्टान्त—१०

यह शब्द 'ज्ञानेश्वरी' (शक १२१२) में बार-बार व्यवहृत हुआ है और श्री एम. गोविन्द पै ने अपनी कन्नड़ पुस्तिका 'श्री बाहुबलि गोमटेश्वर चरित्र' (मंगलोर, १९३९, पृष्ठ ३०, पाद-टिप्पणी २७) में उल्लेख किया है। जैसे :

'नाना सुद्रव्यें गोमटीं । जालेयां शरीर पैठीं ।

हो उनि ठाकति किरिटी । मलु चि जे वि ॥

—१८-७४

इस तरह के वाक्यांशों की संख्या आसानी से बढ़ाई जा सकती है फिर यह शब्द 'अमृतानुभव' में भी आया है : 'सहाय आत्मविद्येचे । करावया आपणा वेचे । गोमटे काय शब्दा चे एकैक वान् ॥ ६-११

‘भास्कर’ (शक ११९५) के ‘शिर्षपालवध’ में भी हमें यह शब्द व्यवहृत मिलता है; ‘सरोवरो निहटी’ घातली सोनकेतकीची ताटी। वरी मांडवी उभिली गोमटी। पाँच वर्णया परागाची ॥ ६५२।

‘गोमट’ शब्द मराठा-काल में आमतौर पर इस्तेमाल किया जाता था, जैसा कि शिवाजी के समकालीन पत्रों में इसके प्रयोग से देखा जा सकता है। सन् १०७७ के एक पत्र में जो शिवाजी ने मालोजी घोरपदे के नाम भेजा था, ‘शिवकालीन पत्रसारसंग्रह’ (जिल्द २, पूना १९३०, पत्र नं. १९०१, पृष्ठ-५५९-६१) में जो तीन वाक्य मिलते हैं, उनमें तीसरा इस प्रकार है: ‘आम्ही सर्व प्रकारे गोमटे कराव-पासी अंतर पडो नेदऊन।’

यह (गोमट) शब्द उन वाक्यों में वाक्य-प्रसंग से स्वयं अपनी व्याख्या कर सकता है। आधुनिक मराठी में इसका अर्थ ‘बरे करने’—‘भलाई करना’ है। वास्तव में उसी पत्र में एक वाक्य मिलता है जो ऊपर लिखे अर्थ को दूसरे शब्दों में व्यक्त करता है: आपल्या जातीच्या मराठिया लोकांचे बरें करावें हे आपणास उचित आहे।’

इसका यह अर्थ है कि शिवाजी उनकी सामाजिक और राजनैतिक भलाई के लिए, संक्षेप में सबकी भलाई के लिए भावना करते हैं।

श्री पै ने पहले ही तुकाराम के ‘अभंगों’ में से, जो प्रायः करके इस शब्द का व्यवहार करते हैं, एक उदाहरण नोट किया है:

‘जडोनी’ गोमटी नाना रत्नें।’ १००

आज भी मराठी में हमें ‘गोरा गोमटा’ का मुहावरा मिलता है और कोई शंका करता है कि क्या यह सब प्रकार से एक जोड़ा अथवा दोहरा प्रयोग है। ऊपर के प्रयोग, जो वैसे ही बिना किसी क्रम का ध्यान रखे हुए छाँटे गये हैं, यह दिखाने के लिए काफी हैं कि ‘गोमट’ शब्द मराठी में एक विशेषण है और इसका अर्थ है—‘साफ’, ‘सुन्दर’, ‘आकर्षक’, ‘अच्छा’ आदि। कौकणी भाषा में भी ‘गोमटो’ शब्द है, और इसका वही अर्थ है जो मराठी में है।

कन्नड साहित्य में इस शब्द के प्रयोग की खोज नहीं की गयी है; फिर भी श्रवणबेलगोल के शिलालेखों में तीन वाक्य हैं और यह उल्लेख क्रमशः सन १११८, ११५९ और ११८० के हैं। वे यहाँ उद्धृत किये जाते हैं:

(१) गोम्मटमेने मुनिसमुद्रा-  
यं मनदोलु मेंचिचि . . . सुत्तुं  
गोम्मटदेवर पूजेग-  
दं मुदादि बिदूनल्ले धीरोदात्तं।

(२) गोम्मटपुर भूषणामिदु

गोम्मट माटतेने समस्तपरिकर सहित । सम्मददि हुल्लचमू-  
पं माडिसिदं जिनोत्तमालयमनिदं ॥

(३) तम्मने पोदरेन्ननुजरेल्लरुमेटदे तपक्के नीनुमितम्म तपक्के वोडोडनगी सिरि-  
योप्प बेडेनुत्तुम प्पं मनमिल्दुमन्नुमिगेयुं बगेगाल्लटे दीक्षेगोडेनी-  
गोम्मटदेव निन्न तरिसंदलवार्यजनक्के गोम्मटं ।

इन वाक्यों का अर्थ है 'प्रसन्न करने वाला', 'उत्तम' इसके अतिरिक्त यह बहुत से व्यक्तिवाचक नामों में आता है। तेलुगु में हमें 'गुम्मडु' शब्द मिलता है, जिसका अर्थ है, 'वह व्यक्ति जो अपने आपको सजाता है'। दक्षिण कनाडा में 'गोम्मटदेव' की मूर्ति आमतौर पर 'गुम्मडदेवर' कहलाती है। तमिल में हमें 'कुम्मट्ट' शब्द मिलता है, लेकिन जहाँ तक मैं देखता हूँ इसका 'गोम्मट' के साथ कोई दृढ़ सम्बन्ध नहीं है। इस शब्द के आदि और शाब्दिक परिज्ञान (एटिमॉलॉजी) के लिए अधिक अध्ययन की आवश्यकता है। शायद यह शब्द दक्षिण भारतीय शब्द-भण्डार से आया है। इसे संस्कृत की किसी धातु से सरलतापूर्वक सम्बद्ध करना संभव नहीं है। फिर भी धात्वादेश 'गुम्मड' है; जिसको प्राकृत वैयाकरणों ने 'मुः' धातु के बराबर किया है; और यह असंभव नहीं कि हमारा शब्द इस धात्वादेश के सकारण अर्थ से बना हो। बस, जो कुछ भी हम इस शब्द के बारे में जानते हैं, वह यह है कि व्यक्तिवाचक नामों के अतिरिक्त यह शब्द सबसे पहले सन् १११८ के एक कन्नड शिलालेख में व्यवहृत हुआ है, यह शब्द मराठी साहित्य में प्रायः प्रयुक्त हुआ है; और यह आजकल भी मराठी तथा कोंकणी में व्यवहृत होता है; और इसके साथ लगे हुए अर्थ अपने दृढ़ सम्बन्ध को व्यक्त करते हैं। मुझे ओशा है, भाषाविज्ञान-वेत्ता इस शब्द पर और अधिक प्रकाश डालेंगे। यह बिलकुल स्पष्ट है कि 'गोम्मट' शब्द को दूसरे शब्द 'गुमट' आदि के साथ मिश्रित नहीं करना चाहिये, जो कि अनेक आधुनिक भारतीय भाषाओं में 'गुम्मद' (अंग्रेजी शब्द कुपोला, डोम, आर्च, वाल्ट) और 'गुम्मददार' छतों आदि के अर्थों में प्रयुक्त होता है। पिछला शब्द फारसी के 'गुम्मद' 'गुम्मज' से बना है और इसका उच्चारण 'गुम्मट', 'घुम्ट' आदि के रूप में किया जाता है।

'गोम्मटसार' की प्राकृत गाथाओं में भी 'गोम्मट' शब्द का व्यंजन 'ट', 'ड' में नहीं बदला है। यह तथ्य इस आधार पर कि यह चामुण्डराय का व्यक्तिगत तथा प्रसिद्ध नाम था और उसी प्रकार जिनका नाम प्रचलित रहा है, यह बात कुछ हद तक ठीक मानी जा सकती है।

इस तरह मैं निष्कर्ष निकालता हूँ कि 'गोम्मट' 'चामुण्डराय का व्यक्तिगत नाम था; चूँकि उन्होंने बाहुबली की मूर्ति की भक्तिपूर्वक प्रतिष्ठा करवायी थी,

इसलिए वह मूर्ति 'गोम्मटेश्वर' कहलाने लगी; और अन्त में नेमिचन्द्र ने उनके लिए जो 'धवली' आदि का सार तैयार किया, वह 'गोम्मटसार' कहलाया। अक्षरमः 'गोम्मट' शब्द का अर्थ है 'उत्तम' आदि।

इस लेख को समाप्त करने से पहले मेरे लिए यह आवश्यक है कि मैं उन पूर्ववर्ती विद्वानों के कतिपय विचारों की प्रत्यालोचना करूँ, जिन्होंने उक्त विषय के विविध पक्षों का स्पर्श किया है और जो विभिन्न निष्कर्षों पर पहुँचे हैं, यद्यपि तथ्य (फैक्ट्स) एक ही हैं।

पं. नाथूरामजी प्रेमी 'त्रिलोकसार' की भूमिका में लिखते हैं: "गोम्मट की मूर्ति के कारण चामुण्डराय इतने प्रसिद्ध हो गये थे कि वे गोम्मटराय कहलाने लगे"। प्रेमीजी ने अपने इस निष्कर्ष की पुष्टि में कोई कारण नहीं दिया है; अतः ऐसे निष्कर्ष की स्वीकृति के विरुद्ध मैं कुछ कठिनाइयों के नोट दिये देता हूँ। ऐसा कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया, जिससे यह प्रकट हो कि श्रवणबेलगोल की मूर्ति बनने से पहले बाहुवली को 'गोम्मट' कहा जाता था। 'राय' चामुण्डराय की प्रसिद्ध उपाधि थी; और यदि यह मान लिया जाए कि गोम्मट का अर्थ बाहुवली था, तो हम 'गोम्मटराय' इस समस्त पद की किस प्रकार व्याख्या कर सकते हैं? मूर्ति को प्रायः गोम्मटदेव, नाथ आदि कहते हैं और बहुत कम तथा पिछले लेखों में केवल गोम्मट कहा गया है। मैं समझता हूँ, प्रेमीजी का निर्णय (निष्कर्ष) दूसरे प्रमाणों की अपेक्षा रखता है, जिनके अभाव में इसे स्वीकृत नहीं किया जा सकता।

'गोम्मटसार' के नाम और मूलस्रोत की व्याख्या करते हुए 'गोम्मटसार बीवकाण्ड' (अंग्रेजी) की भूमिका में श्री जे. एन. जैनी कहते हैं: "ग्रन्थकर्ता ने श्री बर्धमान या महावीर को 'गोम्मटदेव' के नाम से पुकारा है। 'गोम्मट' शब्द संभवतः 'गो' वाणी और 'मट' या 'मठ' घर से बना है, जिसका अर्थ होता है, 'वाणी का घर', वह भगवान् जिससे निरक्षरी वाणी, अद्भुत संगीत, दिव्यध्वनि बहती है। 'सार' का अर्थ निचोड़, संक्षेप अर्थ है। इस तरह गोम्मटसार का अर्थ होगा, 'भगवान् महावीर के उपदेशों का सार'। यह अधिक संभाव्य है कि श्री गोम्मटदेव या भगवान् महावीर के प्रति अपनी अधिक भक्ति के कारण चामुण्डराय भी राजा गोम्मट कहलाते थे। महान् प्रश्नकर्ता (अर्थात् चामुण्डराय) के प्रति अभिनन्दन के रूप में इस संग्रह का नाम उनके नाम के अनुसार 'गोम्मटसार' रखा गया है।" मैंने अपने लेख ('मटेरियल ऑन द इण्टरप्रिटेशन ऑफ द वड्ड गोम्मट') में इस बात की व्याख्या की है कि 'गोम्मटदेव' किस अर्थ में 'महावीर' के बराबर हो सकता है। जब तक यह सिद्ध नहीं हो जाता कि 'गोम्मट' संस्कृत शब्द है, तब तक संस्कृत शब्द-विज्ञान द्वारा बताने का प्रयत्न करना असंगत है। यह केवल लिखने वाले की व्याकरण की चतुराई भले ही प्रकट करे, इससे अधिक और कुछ नहीं; लेकिन इस तरह की कल्पनाओं का, चाहे वे कितनी ही रम्य क्यों न हों, सविवेक इतिहास

और शब्द-विद्या में कोई स्थान नहीं है। शायद श्री जैनी किसी संस्कृत टीकाकार का अनुकरण कर रहे हैं।

श्री एम. गोविन्द पै ने 'इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली' (खण्ड ४, संख्या २) में इस विषय पर एक पूरा लेख लिखा है और उन्होंने प्रायः अपने विचारों को दोहराया है (श्री बाहुबली गोम्मटेश्वर चरित्र) तथा दूसरों ने भी पिछले कुछ वर्षों में दोहराया है। यद्यपि उनका लेख सूचनाओं से भरा हुआ है, फिर भी वह तथ्यों की उनकी अपत्ती व्याख्याओं से निकाले हुए संदिग्ध एवं काल्पनिक निष्कर्षों और प्रभावों से परिपूर्ण है और हर एक को प्रायः यह संदेह होता है कि वे संभव बातों को तथ्य मानकर दूषित वृत्ति से विवाद कर रहे हैं। बहुत से प्रत्यक्ष और परोक्ष विवादास्पद विषयों, को मिला दिया गया है; और उनके कुछ अपवाद (रिजर्वेशन्स) तथा प्रश्न संगत होने की सीमा से बहुत परे हैं। फिर भी मुझे निम्न विषय उनके पर्यालोचन में स्पष्ट जान पड़ते हैं; जिन्हें यहाँ मैं यथासंभव अपने शब्दों में गिनाऊँगा—

१. बाहुबली कामदेव होने के कारण 'मन्मथ' कहलाये जा सकते हैं, जिसका कनडी में (या कोंकणी में अपनी बाद की लिपि के अनुसार) 'गोम्मट' एक तद्भव-रूप है, जिसे उसने प्रायः मराठी से लिया है।

२. सन् ९८१ में प्रतिष्ठित श्रवणबेलगोल की मूर्ति सन् ९९३ तक गोम्मटेश्वर के नाम से प्रसिद्ध नहीं हुई थी; क्योंकि रन्न के 'अजित पुराण' में मूर्ति को 'कुक्कुटेश्वर' लिखा है, 'गोम्मटेश्वर' नहीं।

३. कम-से-कम सन् ९३३ तक चामुण्डराय का 'गोम्मट' या 'गोम्मटराय' ऐसा कोई नाम नहीं था, क्योंकि श्रवणबेलगोल का शिलालेख नं. २८१ चामुण्डराय-पुराण और चारित्रसार ऐसे किसी नाम का उल्लेख नहीं करते हैं।

४. दोड्डय के 'भुजबलिशतक' (सन् १५५०) के अनुसार पोदनपुर के (वहाँ भरत के द्वारा स्थापित) गोम्मट ने अपने को विध्यगिरि पर प्रकट किया था। इससे मूर्ति का नाम 'गोम्मट' बहुत पुराना था और चूँकि चामुण्डराय गोम्मट नहीं कहलाते थे, इसलिए कहा जा सकता है कि चामुण्डराय ने उस मूर्ति के नाम पर से अपना नाम प्राप्त किया।

५. प्रतिष्ठा के समय न तो मूर्ति का और न चामुण्डराय का नाम गोम्मट था; क्योंकि समकालीन शिलालेखों में कोई उल्लेख नहीं है। 'राय' चामुण्डराय की एक उपाधि थी।

६. 'गोम्मटसार', जिसमें 'गोम्मट' का चामुण्डराय के नाम के रूप में उल्लेख है, अवश्य ही सन् ९९३ के बाद लिखा गया है और 'त्रिलोकसार' जिसमें

इसका उल्लेख नहीं है, सन् १८१ से १८४ के मध्यवर्ती समय का बना हुआ होना चाहिये।

७. आ. नेमिचन्द्र ने मूर्ति की प्रतिष्ठा हो जाने के बाद उसके नाम पर से स्वयं चामुण्डराय को गोम्मट नाम दिया था। यह असंभव है कि चामुण्डराय वृद्ध होते हुए 'गोम्मट' कहला सकते, जिसका इन्द्रिय-ग्राह्य अर्थ 'मन्मथ' है।

८. सबसे पहले मूर्ति का नाम 'गोम्मट' पड़ा; और इससे 'गोम्मट-जिन' 'गोम्म-पुर' आदि क्री व्याख्या होती है।

९. यदि श्रवणबेलगोल की मूर्ति का नाम उसकी प्रतिष्ठा कराने वाले के नाम पर 'गोम्मटदेव' पड़ा, तो कारकल तथा वेणूर की मूर्ति के नाम भी अपने प्रतिष्ठापकों के नाम पर होने चाहिये थे, लेकिन चूँकि वे भी 'गोम्मट' कहलाते हैं, इसलिए यह अवश्य ही बाहुबली का नाम रहा है।

अब हमें उक्त निष्कर्षों की युक्तियुक्तता और तर्कसंगतता पर विचार करना चाहिये :

१. 'बाहुबली' कामदेव के कारण 'मन्मथ' कहला सकते थे, यह स्वीकार्य है, लेकिन शाब्दिक समीकरण मन्मथ = गम्मह = गोम्मट के रूप में जो किया गया है, वह श्री पै के निबन्ध के भवन में सबसे अधिक कमजोर शिला है। प्रो. के. जी. कुन्दनगर ने इस समीकरण की युक्तियुक्तता पर ठीक आशंका की है, परन्तु श्री पै ने अपने कथन की पुष्टि और कोई प्रमाण न देकर, उनके साथ एक विनोद क्रिया पाद-टिप्पणी के रूप में, जिससे प्रो. कुन्दनगर को एक लम्बा तथा विद्वत्तापूर्ण नोट लिखने के लिए उत्तेजित किया, जिसमें उन्होंने यह अकाट्य रूप से स्पष्ट कर दिया कि 'मन्मथ' = 'गोम्मट' के लिए सारे प्राकृत व्याकरण साहित्य में कोई आधार नहीं है, और यह कि 'प्राकृत मंजरी' में जो कि वररुचि-कृत सूत्रों की पिछली टीका है, एक अलग-अलग (आइसोलेटेड) केस जो मिलता है, जो गलत छपाई का परिणाम है, जिसे संगत सूत्रों के सावधानीपूर्वक अध्ययन और प्राचीन टीकाओं में उनकी व्याख्याओं के साथ मिलान करने से सहज ही में ज्ञात किया जा सकता है; अपने समीकरण को स्थापित करने के लिए श्री पै इस प्रकार बहस करते हैं :

“कात्यायन की प्राकृत मंजरी में, वह नियम जिससे कि द्विगुण ध्वनि 'न्म' बदल जाती है 'न्मोमह' के तौर पर लिखा गया है, जिसका कारण संस्कृत शब्द 'मन्मथ' जिसका अर्थ कामदेव है, प्राकृत में 'गम्मह' बन जाता है। (१) दन्त्य अक्षरों की ध्वनि, जब वे संस्कृत शब्दों के अन्त में आते हैं 'कनडी' में मूर्धन्य अक्षरों में बदल जाती हैं—संस्कृत ग्रन्थि (गाँठ) = कनडी गण्टि (या गण्टु); संस्कृत श्रद्धा (विश्वास) = कनडी सड्डे; संस्कृत तान (गाने में) = कनडी में टाण,

संस्कृत में पत्तन (नगर) = कनडी पट्टण, संस्कृत में पथ (पथ) कनडी = बट्ट आदि; इसलिए 'मन्मथ' शब्द के अन्त का 'थ' कनडी में कायम नहीं रहता, प्राकृत में उसके स्थान पर जो 'ह' (गम्मह) होता है; वह कनडी में स्वभावतः 'ट' में बदल जाता है और इस प्रकार संस्कृत का 'मन्मथ' = प्राकृत 'गम्मह' अपनी कनडी के तद्भव रूप में 'गम्मट' हो जाता है। (२) कनडी के शब्दों में आदि के 'अ' की ध्वनि लघु 'ओ' (जैसे अंग्रेजी शब्द 'नॉट' में) की ध्वनि के साथ बदलती रहती है, जैसे मगु (बच्चु) = मोग; मम्मग (पोता) = मोम्मग; मगचु (उच्छेद करना) = मोगचु; तप्पलु (घाटी) = तोप्पलु; दड्डु (गोशाल) = दोड्डु; सप्पु (सूखे पत्ते) = सोप्पु; मल (आध गज) = मोल आदि। इसलिए 'गम्मट' से 'गोम्मट' हो जाने का यह एक आसान और अनिवार्य मार्ग है।" इत्यादि।

'प्राकृत मंजरी' वररुचि के (जिन्हें कुछ विद्वानों के मतानुसार कात्यायन भी कहा जाता है) सूत्रों पर पिछली टीका है; इसलिए इस टीका को कात्यायन की टीका बताना गलत है। श्री पै एक दूसरे सूत्र 'मन्मथ वः' (२-३६) को चुपचाप नजर-अन्दाज कर जाते हैं, जिसके अनुसार 'मन्मथ' शब्द में आदि का 'म्' 'वः' में बदल जाता है। नीचे लिखे कारणों से टीका में दिया गया 'गम्मह' पाठ स्पष्टतया गलत अथवा गलत छपा हुआ है: (१) सूत्र ३-४२ में 'न्म' का बदलना लिखा है, आदि के 'म' के परिवर्तन से इसका कोई संबंध नहीं है, (२) आदि के 'म्' की 'वः' में परिवर्तन का उल्लेख विशेष रूप में सूत्र २-३६ में किया है; (३) और अन्त में, जैसा कि प्रो. कुन्वन्गर ने प्रकट किया है, 'गम्मह' रूप न तो इन्हीं सूत्रों पर किसी दूसरे टीकाकार द्वारा, न किसी प्राकृत व्याकरण अथवा शब्दकोश द्वारा ही नोंधा गया है। 'मन्मथ' के लिए साधारण/प्रचलित प्राकृत शब्द 'वम्मह' है। जब तक यह सिद्ध नहीं किया जाता कि 'मन्मथ' = 'गम्मह' यह समीकरण युक्तियुक्त है, तब तक उसके पीछे सब तर्क व्यर्थ हैं। दूसरे 'श्रद्धा', 'ग्रन्थि' आदि की समानताएँ कोई भी वास्तविक समानताएँ नहीं हैं, क्योंकि वे मूर्धन्य नियम की तरह स्वरविद्या के नियमों के अधीन हैं, जिनका 'मन्मथ' के शब्द पर कोई प्रभाव/असर नहीं है। उनकी दलील विधि के अनुसार भले ही ठीक दिखायी पड़े, लेकिन यह सब वंचनशील शब्द व्युत्पत्ति-विद्या है, मेरे विचार में श्री पै तुलनात्मक तर्कों के अन्धकूपों से सर्वथा अनभिज्ञ हैं; विशेष कर प्राकृतों और आधुनिक भारतीय भाषाओं के क्षेत्र में। यदि उनका तरीका अपनाया जाए तो कोई शब्द किसी रूप में बदला जा सकता है। श्री पै द्वारा अंगीकृत न्याय की पैड़ियों पर चलकर मैं यह दिखला सकता हूँ कि 'कुक्कुट' का भी समीकरण 'गोम्मट' या 'गुम्मट' के साथ किया जा सकता है; जब संस्कृत शब्द कन्नड में लिये जाते हैं, तो आदि का 'क' प्रायः 'ग' में बदल जाता है, उदाहरणार्थ कुटि = गुडि, कोटे = गोडे आदि (शब्द मणि-दर्पण

२५६)। प्राकृत में 'क' 'म' में बदल जाता है चन्द्रिका शब्द में (प्राकृत मंजरी २५), इसी तरह एक दोहरा (डबल) 'क्' 'म्म' में बदला जा सकता है। कन्नड में, कभी-कभी 'उ' स्वर 'अ' में बदले जाता है, कस्तुम्बुरु=कोत्तुम्बरि (श.म.२८७), मानुष्यं=मानसं (श.म. २७३)। इस प्रकार 'कुक्कुट' 'गुम्मट' में बदल गया है। श्री पै इस विधान पर आपत्ति नहीं कर सकते, क्योंकि उन्होंने स्वयं इसे अंगीकार किया है; लेकिन यह सब स्वरविद्या (ध्वनिशास्त्र) का मजाक उड़ाना और शब्द-शास्त्रीय परिकल्पना की फिसलने वाली भूमि पर पागलों की तरह दौड़ लगाना है; अतः श्री पै का मन्मथ=गम्मह यह समीकरण किञ्चित् भी सिद्ध नहीं होता है।

२. यदि श्री पै 'बाहुबली'='कामदेव'='मन्मथ' > 'गोम्मट' इस समीकरण को लेकर जो कि उक्त कथनानुसार है, सिद्ध नहीं है, प्रस्थान करते हैं, तो यह कहना कि मूर्ति सन् ९८१ अथवा ९९३ तक 'गोम्मटेश्वर' नहीं कहलायी जा सकती थी; अपना ही विरोध अपने-आप करना है। 'बाहुबली' काफी समय से 'कामदेव' प्रसिद्ध हैं; अतः या तो श्री पै को यह समीकरण छोड़ देना चाहिये अथवा मान लेना चाहिये कि बाहुबली प्राचीन काल में 'गोम्मट' कहलाते थे। यदि वे दूसरी बात को स्वीकार करें, तो उनको वे प्राचीन वाक्य दिखलाने पड़ेंगे जिनमें बाहुबली को 'गोम्मटेश्वर' कहा गया है। वे कह सकते हैं कि भरत ने पोदनपुर में 'गोम्मट' की मूर्ति निर्माण करवायी थी; लेकिन इसके लिए भी समकालीन साक्षी नहीं है और वे दोड्डय्य के, जो ईसा की १६वीं सदी के मध्य हुए हैं, वर्णन का आश्रय लेते हैं। इस बात से कि रन्न ने 'कुक्कुटेश्वर' नाम का तो उल्लेख किया है, किन्तु 'गोम्मटेश्वर' का नहीं, कुछ भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि यह कोई विधायक साक्षी (प्रमाण) नहीं है। यदि हम अपनी संगतता और टीकाकारों की व्याख्याओं पर ध्यान दें, तो 'गोम्मटसार' में भी बाहुबली का निर्देश करने के लिए 'कुक्कुटजिन' का उल्लेख तो है, परन्तु 'गोम्मटेश्वर' का नहीं, यदि दोड्डय्य चामुण्डराय का 'गोम्मट' के नाम से उल्लेख नहीं करते हैं, तो क्या हमारा यह कहना न्यायसंगत होगा कि सन् १५५० तक चामुण्डराय का नाम 'गोम्मटाराय' सर्वथा नहीं था? वास्तव में श्री पै के नोटों में से एक इसी अभिप्राय को सूचित करता है।

३. पुनः यह एक निषेधात्मक साक्षी और मौन रहने के रूप में बहस का मुद्दा है, जिससे कोई बात सिद्ध/साबित नहीं होती। जैसा कि मैंने ऊपर सुझाया है, 'गोम्मट' चामुण्डराय का निजी/घरेलू नाम प्रतीत होता है और ऐसा होने से हर जगह उसका विधान नहीं हो सकता और न ही रिकार्डों (लेख्यपत्रों) का यह दावा है कि वे चामुण्डराय के सब नामों की गिनती कर रहे हैं।

४. दोड्डय्य (सन् १५५०) के 'भुजबलिशतक' के आधार पर यह मानकर कि पोदनपुर की मूर्ति 'गोम्मट' कहलाती है, श्री पै आज अपने एक दूसरे

निष्कर्ष का विरोध कर रहे हैं, जिसमें कहा गया है कि मूर्ति सन् ९८१ या ९९३ तक 'गोम्मट' नाम से प्रसिद्ध नहीं थी। वे इस बात को भूल जाते हैं कि भरत के समय की एक घटना को सिद्ध करने के लिए १६ वीं सदी के एक रिकार्ड का इस्तेमाल कर रहे हैं।

५. एक निषेधात्मक साक्षी और मौन रहने की बहस से कुछ भी साबित नहीं होता।

६. हमें 'गोम्मटसार' और 'त्रिलोकसार' के रचे जाने की ठीक तिथियों का पता नहीं है और न उन्हें प्राप्त करने के कोई निश्चित साधन उपलब्ध हैं। स्वयं श्री पै ने 'गोम्मट' नाम के उल्लेख या अनुल्लेख पर से इन तिथियों को प्रस्तुत किया है, और यदि हम 'बाहुबली' के नाम के रूप में 'गोम्मट' शब्द के प्रयोग-काल की अवधियों को निश्चित करने के लिए इन तिथियों की सहायता लें, तो हम दुष्ट परिधि/दुश्चक्र के भीतर विवाद करने वाले होंगे।

७. हमारे पास इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि नेमिचन्द्र ने चामुण्डराय को 'गोम्मट' नाम दिया था; और मुझे भय है कि स्पष्ट तथ्य यहाँ थोड़ा-सा तोड़ा-मरोड़ा जा रहा है। जो कुछ हम जानते हैं वह यह है कि नेमिचन्द्र 'गोम्मट' को चामुण्डराय के नाम के रूप में उल्लेखित करते हैं; और इससे इस वस्तुस्थिति का निषेध नहीं होता कि उनका ऐसा नाम पहले से ही था। यह तथ्य कि चामुण्डराय ने मूर्ति पर से यह नाम प्राप्त किया, केवल तब ही स्वीकृत किया जा सकता है, जब कि पहले यह सिद्ध कर दिया जाय कि श्रवणबेलगोल की मूर्ति की स्थापना के पहले बाहुबली का एक नाम 'गोम्मट' था। मन्मथ = गोम्मट यह समीकरण पहले ही असफल (फैल) हो चुका है, न पौदनपुर के 'गोम्मट' के लिए दोड्डय्य का हवाला हमारी रक्षा के लिए आ सकता है। 'गोम्मट' इन्द्रियग्राह्य अर्थ रखता है, यह बात ऊपर के समीकरण से निकाली गयी है, जो कि पहले ही खंडित कर दी गयी है और ऐसा होने से बहस का सारा बल चला जाता है। यह एक निरर्थक बहस है कि चामुण्डराय वृद्ध थे और इसलिए 'गोम्मट' नहीं कहलाये जा सकते थे, जो कि कतिपय ऐसे प्रमाणों की पूर्वकल्पना करता है, जो या तो ऊपर खंडित कर दिये गये हैं या सर्वथा अप्राप्य हैं।

८. चूंकि मन्मथ = गोम्मट, यह समीकरण स्थापित नहीं हो सकता, इसलिए यह अभी तक असिद्ध रह जाता है कि बाहुबली का एक नाम 'गोम्मट' था; लेकिन दूसरी ओर 'गोम्मटसार' में चामुण्डराय का एक नाम 'गोम्मट' निश्चित रूप से मिलता है और उनका देवता, बाहुबली की मूर्ति 'गोम्मटेश्वर' आदि कहलाया जा सकता था। 'गोम्मटसार' में उल्लिखित 'गोम्मट-जिन' का बाहुबली से कोई वास्ता नहीं है। मैं इस संभावना को मानता हूँ कि जब मूर्ति एक बार 'गोम्मटेश्वर' के

नाम से प्रसिद्ध हो गयी, तो बाद के दिनों में इस नाम के साथ बहुत-सी चीजों का संबन्ध जुड़ सकता था।

९. श्री पै ने अपने लेख के प्रारंभ में इस प्रश्न का उत्तर दिया है और मैं उनकी गरमागरम बहस को रद्द करने के लिए केवल उनके शब्द उद्धृत किये देता हूँ: "यहाँ पर यह भी नोट कर लिया जाय कि तीन महान्/विशाल मूर्तियों में से सबसे पहली अर्थात् चामुण्डराय (या चावुंडराय) द्वारा श्रवणबेलगोल में स्थापित मूर्ति का 'गोम्मट' आदि (या गोम्मटेश्वर आदि) आम नाम सबसे पहले पड़ा और जब समय बीतने पर ऐसी महान् मूर्तियाँ कारकल तथा वेणूर में स्थापित हुईं तो उनका नाम भी श्रवणबेलगोल के समान अपने महान् मूल आदर्श के ऊपर पड़ा।" यह पूछ कर कि पिछली दोनों मूर्तियों का नामकरण अपने संस्थापकों के नामानुसार क्यों नहीं हुआ, वे केवल अपने पूर्वकथन का, जो कि अधिक युक्ति-युक्त है, विरोध करते हैं।

इन मुख्य दलीलों के अतिरिक्त बहुत-सी दूसरी छोटी बातें हैं, जिनका प्रस्तुत विषय के साथ कोई सीधा संबन्ध नहीं है, इसलिए उनके लिए किसी श्रमसाध्य खंडन की आवश्यकता नहीं है। उनकी गोम्मट-विषयक स्वरविद्या की कल्पना, उनका नोट कि 'कोंकणी' मागधी या अर्धमागधी आदि से निकाली गयी थी, अधिक गंभीरता के साथ विचार करने के योग्य नहीं है।

पं. ए. शान्तिराज शास्त्री ने अपनी कन्नड-पुस्तिका 'श्री गोमटेश्वर चरित,' मैसूर, १९४० ने हाल में इस विषय को एक छोटे नोट में संस्पर्श किया है जिनकी बहुत-सी बातों से हम सहमत हैं। वे भी कहते हैं कि नेमिचन्द्र ने बाहुबली का 'गोमट' नाम रखा है, परन्तु उन्होंने अपने इस नोट को सिद्ध करने के लिए कोई विशेष वाक्य उद्धृत नहीं किया है। 'गुम्मड' शब्द में 'ड' के 'ट' में बदल जाने की व्याख्या के लिए वे त्रिविक्रम के व्याकरण से सूत्र नं. ३।२।६५ को उद्धृत करते हैं, लेकिन मुझे यह बतला देना चाहिये कि यह विशेष सूत्र 'चूलिका-पैशाची' भाषा के लिए निर्दिष्ट है और यह किसी जगह तथा हर जगह प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस परिवर्तन की व्याख्या यह कहकर हो सकती है कि या तो यह शब्द को संस्कृत का रूप देने की प्रवृत्ति को लिये हुए है, या यह दक्षिण की कुछ भारतीय भाषाओं की प्रवृत्ति के उदाहरण-स्वरूप है, जो प्रायः कोमल व्यंजनों को कठोर बना देती हैं। आखिरकार यह एक संभाव्य व्याख्या है; फिर भी यह निश्चय है कि हमारा उस सूत्र को इस प्रसंग से जोड़ना ठीक नहीं है।

श्री के. पी. मित्र ने 'द जैन एन्टीक्वरी' (खण्ड ६) में बाहुबली पर एक लेख लिखा है। यद्यपि वे गोम्मट-संबन्धी अपनी बहस की बहुत-सी बातों पर श्री पै का अनुकरण करते हैं, फिर भी उन्होंने एक पादटिप्पणी (फुटनोट) में ठीक लिखा है कि 'मन्मथ' का 'मम्मह' या 'वम्मह' यह निर्णीत तत्सम है; और वे इसे एक खुले प्रश्न की तरह छोड़ देते हैं कि क्या 'गम्मह' को 'मन्मथ' के बराबर किया जा सकता है? □□

## भगवान् बाहुबली अर्थात् क्षमा, शान्ति, समता, एकता

डॉ. नेमीचन्द जैन : भट्टारक स्वामीजी, यहाँ श्रवणबेलगोल में कई तरह की प्रवृत्तियाँ चल रही हैं, कई लोग इनमें लगे हुए हैं। इनका जिस सेवा में रूपान्तर हो सकता है, उस सेवा के स्वरूप पर प्रकाश डालिये।

भट्टारक चारुकीर्ति : सेवा पर अनेक दृष्टिकोणों से सोचा जा सकता है, जिसमें धर्म का दृष्टिकोण भी है। इस प्रकार परोपकार भी सेवा है।

ने. : जैनधर्म प्राणिमात्र के लिए हैं, उसकी सेवा की व्याप्ति प्राणिमात्र है; लेकिन हम यहाँ मनुष्य-मात्र को केन्द्र में रखकर सेवा की बात कर रहे हैं, ताकि मानव-सेवा की बात कार्यकर्ताओं की पकड़ में आ सके। इस दृष्टि से जहाँ जो कार्य हो रहा है, हो सकता है, उसके स्वरूप को स्पष्ट कीजिये।

चा. : अभी तो यहाँ ऐसी मानव-सेवा की शुरुआत हुई है; जैसे, नेत्र-शिविर के माध्यम से ४०० आदमियों की आँखों का सफल ऑपरेशन हुआ। इसके बाद इस क्षेत्र में बसे हुए लोगों के घरों के आसपास एक हजार नारियल के पेड़ लगाये गये, जो उनकी स्थायी आमदनी के साधन बन सकेंगे। एक धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय खोला गया है, जिसका भवन तैयार हो गया है, जिस पर एक लाख अड़सठ हजार, रुपये खर्च हुए हैं। एक मोबाइल हॉस्पिटल (चलता-फिरता अस्पताल) खोलने का विचार है। यहाँ एक अस्पताल तो है, लेकिन हमें तो गाँव-गाँव जाकर सेवा करनी है। गाँव-गाँव में दूर-दूर रहनेवाले यहाँ अस्पताल में नहीं आ सकते। वे बैलगाड़ी से आते हैं, उन्हें देर लगती है और परेशानी भी उठानी पड़ती है। इसलिए मोबाइल हॉस्पिटल की आवश्यकता है। यह मस्तकाभिषेक के बाद खुल सकेगा।

ने. : कोई बीमार है, रोगग्रस्त है, अपंग है, पीड़ित है ऐसे लोगों को देखकर सहज ही आपके मन में सेवा की भावना जाग्रत होती है। भ. बाहुबली के इस क्षेत्र में ऐसे लोगों की सेवा और किस प्रकार की जा सकती है, इस बारे में और बताइये।

चा. : यह देखा गया है, यहाँ जो छोटे-छोटे, नन्हें-नन्हें बच्चे हैं, विटामिन की कमी के कारण न तो स्कूल जा सकते हैं और न काम कर सकते हैं। उनका शारीरिक और मानसिक विकास रुक जाता है। वे भी स्वस्थ और सुन्दर बन सकते हैं। उनके विकास के लिए पौष्टिक आहार के वितरण की आवश्यकता है। रोटरी

क्लब के साथ मिलकर वितरण का कार्य हो रहा है। यह भी एक प्रकार का उपकार है।

ने. : आपने कहा कि सेवा के रूप में उपकार किया या हुआ; क्या सेवा में करुणा अधिक और उपकार की भावना कम होती है?

चा. : उपकार का मतलब यह कि करुणा तो मन में होती है, लेकिन उपकार किया जाता है। करुणा मन की वेदना है और उपकार करुणा का फल है।

ने. : हम ऐसा चाहते हैं कि जिसकी सेवा की जाए, उसे पता नहीं लगना चाहिये कि उसकी सेवा की जा रही है। क्या इस ओर आपका ध्यान जा रहा है?

चा. : ऐसा तो नहीं हो सकता; क्योंकि जिनकी सेवा की जा रही है, उन्हें पता तो लगना चाहिये कि उन्हें सहायता पहुँचायी जा रही है।

ने. : इसमें अहंकार का खतरा है।

चा. : अहंकार का खतरा तो है, लेकिन अहंकार नहीं होना चाहिये।

ने. : यदि आप जानेंगे नहीं कि आप सेवा कर रहे हैं, तो अहंकार नहीं होगा।

चा. : सेवा कर रहे हैं, ऐसा आभास नहीं होगा; लेकिन हम सेवा क्यों कर रहे हैं, किसके लिए कर रहे हैं, क्या कर रहे हैं, इसका नतीजा क्या होगा, सब बातें तो हमें मालूम होनी चाहिये।

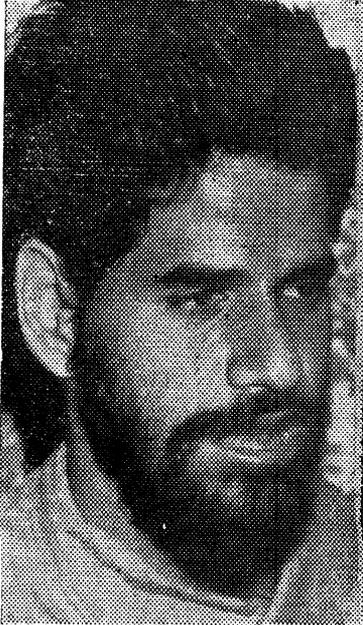
ने. : मुख्य बात यह है कि सेवा को जाना जरूर जाए; लेकिन अहंकार न करें, निरहंकार-वृत्ति रखें; तभी सेवा की सार्थकता है। जैसा, ईसाई मानव-सेवा करते हैं।

चा. : उनके समान या बढ़कर मानव-सेवा करें, यह तो उत्तम है। हमें भी संकट के समय सेवा-कार्य करना चाहिये; क्योंकि अकाल, अनावृष्टि, बाढ़, तूफान आदि प्रकृति-प्रकोप के समय सेवा की आवश्यकता रहती है, तब सेवा का महत्व भी बढ़ता है। जैसे, अकाल पड़ा, तो ईसाई मिशनवाले वहाँ जाकर सेवा करते हैं, कष्ट दूर करने की कोशिश करते हैं। ऐसी स्थिति में जैन मिशन को आगे आना चाहिये। जैन समाज में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो सेवा के लिए तैयार न हों, लेकिन उन्हें मौका नहीं मिल पाता। उन्हें आकर्षित/प्रेरित करने के साथ संगठित करना भी तो आवश्यक है। हमारे समाज में कई लोग हैं, जो ऐसे समय धन देना चाहते हैं, लेकिन कार्यकर्ताओं के अभाव के कारण ऐसा करना संभव नहीं हो पाता है। ऐसे समय सेवा-कार्य नहीं कर पाने के कारण मन में असन्तोष रहता है। पश्चात्ताप भी रहता है। इस दिशा में बहुत-कुछ किया जा सकता है, किया भी जाना चाहिये।

ने. : आपका ध्यान इस ओर भी है, यह प्रेरक और उत्साहवर्धक है; श्रेय-स्कर भी है। महामस्तकाभिषेक के इस भव्य और विराट् महोत्सव में सम्मिलित होने वाले यात्रियों के लिए आप कोई सन्देश दीजिये।

चा. : उनके लिए मैं क्या सन्देश दूँ? सन्देश तो बाहुबली भगवान देंगे।

ने. : आप माध्यम बन जाइये।



चा. : बाहुबली भगवान् की यह विशाल मूर्ति को देखते हैं, तो हम कुछ-न-कुछ त्याग करते हैं। केवल धन का ही दान देते हैं, ऐसी बात नहीं है। अपने जीवन में जो कुछ धर्म-विरुद्ध, नैतिकता के विरुद्ध भी, अपनी संस्कृति के विपरीत कार्य करते हैं या जो भी गलती करते हैं या होती है; यहाँ बाहुबली भगवान् की यह भव्य मूर्ति को देखकर हमें अपनी गलती महसूस होने लगती है और हम ऐसी गलती को आगे न दोहराने या होने देने का संकल्प लेते हैं, जिससे हमारे जीवन में सुधार होता है / हो सकता है। अब तो यहाँ नाना प्रकार के सेवा-केन्द्रों के लिए

धन का त्याग भी कर सकते हैं। महामस्तकाभिषेक के बाद भी यहाँ यात्री आते रहेंगे, उनके लिए धर्मशाला और विश्रान्ति भवन का निर्माण करना है। अन्त-राष्ट्रीय जैन संशोधन-केन्द्र की स्थापना करनी है। ऐसे कार्यों के लिए दान दे सकते हैं; जिससे ऐसी प्रवृत्तियों को यथाशीघ्र चलाने/बढ़ाने में प्रोत्साहन मिलेगा।

ने. : गांधीजी ने कहा था कि 'मिरा जीवन ही सन्देश है'। क्या इतने कम शब्दों में आप कोई सन्देश दे सकते हैं?

चा. : बाहुबली भगवान् की सेवा करने के बजाय बाहुबली-के भक्तों की सेवा करो—यह सन्देश हो सकता है।

ने. : बाहुबली क्षमा के, शान्ति के, समता, के एकता के प्रतीक हैं। उनकी यह भव्य/दिव्य मूर्ति स्वयं ही सन्देश है।

चा. : यह तो है ही। उनके भक्तों की सेवा बाहुबली की सेवा है।

ने. : बाहुबली के भक्त किसे माने ?

चा. : जो अहिंसक है, कला-प्रेमी है, श्रद्धावान है, उन्हें बाहुबली का भक्त मान सकते हैं ।

ने. : क्या अहिंसक की सेवा स्वयं अहिंसक होकर की जा सकती है । हम भी अहिंसक हो जाएँ, यह सेवा होगी या नहीं !

चा. : सेवा क्यों नहीं होगी ? अवश्य ही होगी ।

ने. : क्या इस तरह से सेवा करें ?

चा. : सेवा का व्यापक अर्थ है । इसमें हमें सर्व / विविध दृष्टिकोण से विचार करना है । सेवा के व्यापक अर्थ में जो भी आ जाए, उसका समावेश करना है ।

ने. : कार्यकर्ताओं के लिए कोई बात कह दीजिये । इतना बड़ा आयोजन है, उनमें कुछ-न-कुछ मतभेद भी हो सकते हैं ।

चा. : कार्यकर्ताओं को यही सन्देश है कि उन्हें सहनशीलता बरतनी चाहिये । प्रतिकूल और असह्य परिस्थिति में भी उन्हें सहनशील बने रहना चाहिये । कार्यकर्ताओं की व्यवस्था में भी कमी हो सकती है, उन्हें भी सहनशीलता से काम लेना चाहिये । यह तो सारे जैन समाज का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महोत्सव है । इसे यशस्वी बनाने के लिए प्रयत्नशील रहता है । जो भी असुविधाएँ हों, कष्ट हों, संकट हों, कठिनाई/तकलीफ हों, उसे सहन करते हुए, झेलते हुए हमें महोत्सव को यशस्वी बनाना है । कोई अप्रिय घटना न होने पाये, इसके लिए भी हमें सतर्क/सावधान रहना है । हमें तो हर प्रकार से, पूरी-पूरी कोशिश करके इस महोत्सव को सफल/सार्थक बनाने के लिए तत्पर रहना ही है ।

ने. : गोम्मटेश्वर को प्रणाम ! आपको भी प्रणाम ! बहुत अच्छा सन्देश आपने दिया । आभारी हूँ आपका ।

चा. : आपके प्रश्न बहुत सुन्दर थे ।

□□

(श्रवणबेलगोल, 14 जनवरी, 1981)

## हमारा कर्तव्य : दूसरों को सुविधा

डॉ. नेमीचन्द्र : आद. साहूजी, आप भ. बाहुबली गोम्मटेश्वर प्रतिष्ठापना सह-स्राब्दि महोत्सव कार्यकारी समिति, श्रवण-बेलगोल के अध्यक्ष हैं और उत्सव की सारी गतिविधियों से जुड़े हुए हैं, कृपापूर्वक बतायें कि इस अवसर पर जो कार्यकर्ता मोर्चे पर हैं, सेवा का संकल्प लेकर काम कर रहे हैं, वे और क्या करें ?



साहूजी : डॉ. जैन, सेवा सबमें बड़ा कार्य है। सेवा वही कर सकता है, जो स्वयं को भूल जाए और सिर्फ दूसरों की असुविधाओं और कष्टों का ध्यान रखे। जहाँ तक मैं जानता हूँ यहाँ सभी एक महान् विचार और संकल्प से प्रेरित होकर काम कर रहे हैं। हम सब चाहते हैं कि यात्रियों को कोई कष्ट न हो और वे अपनी यात्रा सुख-शान्तिपूर्वक संपन्न करें। हमारे कार्यकर्ता सद्विवेक, धीरज और सहनशीलता से काम कर रहे हैं, किन्तु उनकी भी सीमाएँ हो सकती हैं अतः यदि उनसे कोई भूल/प्रमाद होता है तो उन्हें क्षमा करें और सारी व्यवस्था का सौजन्य-पूर्ण लाभ उठायें।

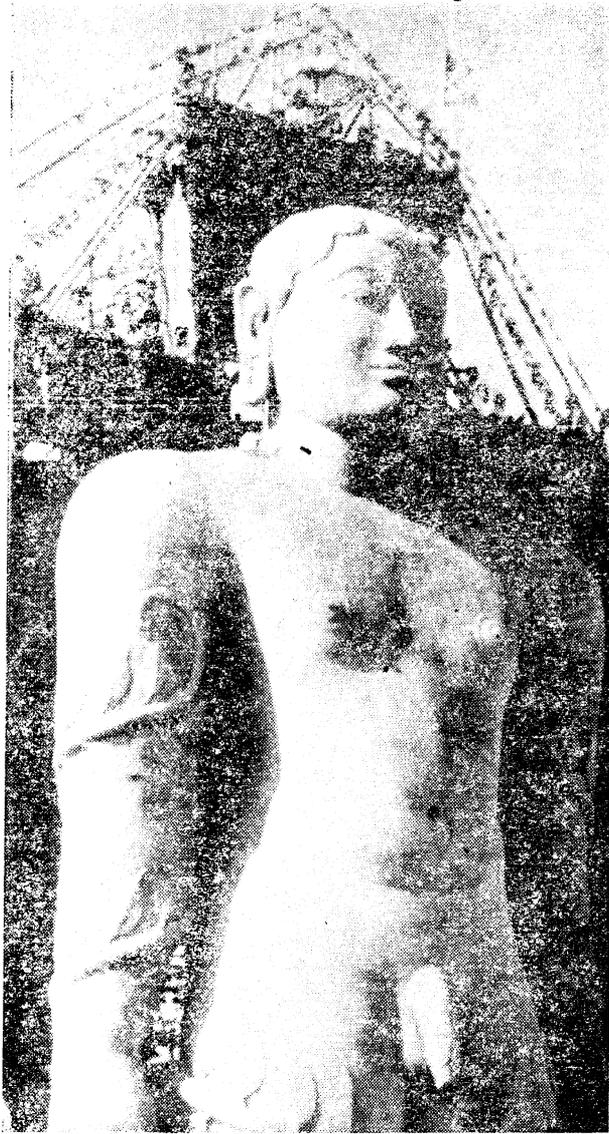
ने. : क्या इस महान् अवसर पर एकत्रित जनसमुदाय को आप कोई संदेश देना चाहेंगे ?

सा. : मैं क्या संदेश दूँ ? भ. बाहुबली की सदियों से खड़ी यह विशाल प्रतिमा ही स्वयं में एक महान् संदेश है—शान्ति का, अहिंसा का, आत्मोत्थान का, अभय का, आत्मबल का। यदि यहाँ आ कर लोग अपने आत्मानुशासन को समृद्ध करते हैं और अपनी अनन्त आत्मशक्तियों का बोध पाते हैं तो यह महान् उपलब्धि है। यदि इस तीर्थयात्रा में हम मानव-सेवा का सच्चा संकल्प करते हैं तो हमारी यह यात्रा पूरी तरह सफल/सार्थक सिद्ध होगी।

ने. : सामाजिक एकता को लेकर आप कोई बात कहना पसंद करेंगे ?

सा. : देखिये, समय के जिस मोड़ पर आज हम हैं, वहाँ एक होने की आवश्यकता से हम इंकार नहीं कर सकते। हम सब एक हों और देश-दुनिया के लोगों पर अपने चरित्र में से अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि को प्रकट करें तो यह काम महत्त्व का होगा। वस्तुतः जैनधर्म को आज चरित्र में से अभिव्यक्ति देने की जरूरत सबसे अधिक है।

ने. : बहुत, बहुत आभार बाबूजी आपका; सच, चरित्र के बिना हमारा कोई काम सार्थक/प्रभावी सिद्ध नहीं हो पायेगा। यदि उत्सव के इस कोलाहल में भी हम अपना चरित्र बनाये रख सके तो संसार के सामने वैसा ही उदाहरण हम रख सकेंगे जैसा अजितवीर्य बाहुबली ने रखा और आत्मानुशासन के माध्यम से विश्व पर शासन किया। □



मूर्ति-परिमाण : गोममटेश्वर बाहुबली, श्रवणबेळगोळ

चरण से कर्ण के अधोभाग तक ५०', कर्ण के अधोभाग से मस्तक तक ६'६", चरण की लम्बाई ९', चरण के अग्रभाग की चौड़ाई ४' ६", चरण का अंगुष्ठ २' २". पादपृष्ठ की ऊपर की गुलाई ६' ४", जंघा की अर्ध गुलाई १०', नितम्ब से कर्ण तक २४' ६", पृष्ठ-अस्थि के अधोभाग से कर्ण तक २०', नाभि के नीचे ऊपर की चौड़ाई १३' कटि की चौड़ाई १०', कटि और टहनी से कर्ण तक १७', बाहुमूल से कर्ण तक ७', वक्षस्थल की चौड़ाई २६', ग्रीवा के अधोभाग से कर्ण तक २' ६", तर्जनी की लम्बाई ३' ६" मध्यमा की लम्बाई ५' ३", अनामिका की लम्बाई ४' ७", कनिष्ठिका की लम्बाई २' ८"

# ‘गोम्मटेस-थुदि’ के हिन्दी-अनुवाद

—डा. नेमीचन्द जैन

गोम्मटेश्वर, जिन्हें बाहुबली, गोम्मटप्रभु, नाभिपौत्र, ऋषभपुत्र, भुजबली आदि अनेक नामों से जाना जाता है, की विशाल, मनोज्ञ प्रतिमा का निर्माण गंग-नरेश राचमल्ल के सेनापति चामुण्डराय ने दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में करवाया तथा प्रतिष्ठापना १३ मार्च ९८१ ई. तदनुसार चैत्र शुक्ला पंचमी, रविवार, वि. सं. १०३८ में हुई। यह कलापूर्ण विश्वविश्रुत प्रतिमा समुद्रतल से ३३४७ तथा सम-तल से ४७० फुट की ऊँचाई पर विन्ध्यगिरि नामक पहाड़ी पर स्थित है। ६,००० की जनसंख्या वाले कर्नाटक राज्य के हासन जिले के ग्राम श्रवणबेळगोळ में प्रतिष्ठित जैनों के प्रथम तीर्थंकर के पुत्र बाहुबली की यह ध्यानावस्थित खड्गासनी प्रतिमा एकप्रस्तरीय मूर्तिकला का ज्वलन्त-जीवन्त उदाहरण है। शिल्पी ने इसकी रचना में काव्य-जैसी गहराइयों और सूक्ष्मताओं का ध्यान रखा है। सौष्ठव और अनुपात में यह प्रतिमा अप्रतिम है। पर्वत में ही अपनी नींव लिये यह प्रतिमा वास्तव में अध्यात्म का एक महाकाव्य ही है। सर्वांगपूर्ण इस बाहुबली-विग्रह का आत्मवैभव शब्दातीत है, अद्वितीय है, वर्णन से परे है।

सेनापति चामुण्डराय के गुरु श्रीनेमिचन्द्राचार्य ने इस प्रतिमा की वन्दना में जिस स्तुति की रचना की थी उसे “गोम्मटेस-थुदि” के नाम से जाना जाता है। यह अपने रचनाकाल में तो प्रसिद्ध हुई ही होगी, आज भी अपने मूल और हिन्दी-अनुवादों में काफी लोकप्रिय है। “गोम्मटेस-थुदि” प्राकृत में है और \*उपजाति-वृत्त (उवजादिवृत्त) में लिखी गयी है। उपजाति वृत्त में ११ वर्ण होते हैं और ४ चरण अर्थात् प्रत्येक चरण में ११ के हिसाब से कुल ४४ वर्ण होते हैं। गो. थु. में ८ छन्द हैं तथा प्रत्येक छन्द के अवसान में “तं गोम्मटेसं पणमामिणिच्च” की टेक है। इस तरह थुदि में कुल २५ (८ × ३ + १ = २५) मौलिक काव्य-पंक्तियाँ हैं, जो अन्यतम हैं और गोम्मटेश्वर के अलौकिक व्यक्तित्व तथा आन्तरिक वैभव का सजीव चित्रण करती हैं। समस्त थुदि सरस, कर्णमधुर, स्वल्पाक्षरविशिष्ट शैली में विरचित है।

हिन्दी में “गोम्मटेस-थुदि” के अब तक २ गद्य तथा ५ पद्यानुवाद सामने आये हैं। सर्वप्रथम अनुवाद (गद्यानुवाद) एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी का है, जो १९७९ में जैनमठ, श्रवणबेळगोळ द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसकी लघुकाय

\*प्राकृत पैगलम्-२; प्राकृत टक्स्ट सोसायटी, वाराणसी, 1959; पृ. 241; पद्य-संख्या—118-121; उपजाति (उपजाद); 14 भेद—कीर्ति, वाणी, माला, शाला, हंसी, माया, जाया, बाला, आर्द्रा, भद्रा, प्रेमा, बुद्धि, ऋद्धि।

भूमिका में श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन ने थुदि तथा बाहुबली के व्यक्तित्व पर संक्षेप में प्रकाश डाला है। अनुवाद सरल, सुबोध और प्रभावशाली है। द्वितीय गद्यानुवाद अपभ्रंश के विद्वान् डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन का है, जो उनकी अनुवाद-कृति (दे.सं. १०) "बाहुबली-आख्यान" के अन्त में प्रकाशित है। अनुवाद त्रिद्विधापूर्ण है, किन्तु सरलता/प्रसादत्व में एलाचार्यश्री के अनुवाद की बराबरी नहीं कर सका है। डॉ. जैन की अपनी संतुलित अनुवाद-शैली है तदनु रूप यह अपनी जगह सार्थक है।

"थुदि" के ५ हिन्दी-अनुवाद (पद्य) हुए हैं, जिन्हें क्रमशः लक्ष्मीचन्द्र जैन-१९७९ (दे.सं.७), नाथूराम डोंगरीय-१९७९ (दे.सं. ९), नीरज जैन-१९८० (दे.सं.८)। आचार्य विद्यासागर-१९८० (दे.सं.६), तथा डॉ. नेमीचन्द्र जैन-१९८१ (दे.सं. ११) ने किया है। इनमें से प्रथम दो १९७९, क्र. ३ और ४ १९८० तथा अन्तिम १९८१ में हुआ है। प्रायः सभी अनुवाद किसी-न-किसी पुस्तक अथवा पत्र-पत्रिका में सम्मिलित हैं, स्वतन्त्र पुस्तिका के रूप में प्रकाशित नहीं हैं। उक्त पद्यानुवादों में आचार्य विद्यासागरजी का अनुवाद उन्मुक्त और अपनी तरह का है।

लक्ष्मीचन्द्र जैन का अनुवाद पद्यानुवाद की शृंखला में सर्वप्रथम है। यह उनकी उल्लेखनीय, प्रमाणों और जानकारियों से समृद्ध, तथापि संज्ञानोन्मुख कृति "अन्तर्द्वन्द्वों के पार गोम्मटेश्वर बाहुबली" के पृ. ११९-२० पर प्रकाशित है। अनुवाद संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी मूल स्तुति को पूरे बल/सार्थकता से संप्रेषित करने में समर्थ है। वस्तुतः इसे बहुत पहले ही एक स्वतन्त्र पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हो जाना था। शेष ४ पद्यानुवाद इसी की प्रेरणा प्रतीत होते हैं।

द्वितीय पद्यानुवाद इन्दौर के पं. नाथूलालजी डोंगरीय का है, जो उनकी अनुवाद-कृति, 'द्रव्यसंग्रह दीपिका' के आरंभ में प्रकाशित है (दे.सं. ९)। इसमें समस्त पदों का अधिक प्रयोग हुआ है। अनुवाद संस्कृतनिष्ठ तो है ही; किन्तु जटिल भी है और प्राकृत की सहजता/स्वाभाविकता को संभाल/झेल नहीं पाया है। "शरमाता" जैसा शब्द गुंजिया में कंकरी की तरह अचानक ही चुभ जाता है। खड़ी बोली का जो गौरव इसमें से प्रकट होना था, वह पूर्णतः अनपस्थित है। इसे सरल होना था और गेय भी। स्तुति का गेय होना उसकी प्रथम अनिवार्यता है।

तृतीय कवि नीरज जैन का है। नीरज कवि-हृदय होने के साथ ही मूर्ति-कला के विशेषज्ञ और पुरातत्त्ववेत्ता हैं। उनका थुदि-पद्यानुवाद 'बाहुबली-पूजा' की 'जयमाल' के रूप में प्रकाशित है। 'जयमाल' में कुल १० पद्य हैं, जिनमें से १ और १० को छोड़ देने पर "थुदि" का अनुवाद सामने आता है। वस्तुतः पूजांश हो जाने के कारण उक्त अनुवाद गौण हो गया है अन्यथा इसके लोकप्रिय होने की काफी संभावनाएँ थीं/हैं। अनुवाद सरल, सुबोध, सरस, सुगेय है तथापि नेमि-चन्द्राचार्य को शब्दशः संप्रेषित करने में असमर्थ है।

चौथा अनुवाद आचार्य विद्यासागरजी का है। आचार्यश्री प्रयोगधर्मी मुनि-कवि हैं। संगीतविद् हैं अतः नादसौंदर्य की ओर उनका ध्यान सहज ही चला जाता है। उनकी अभिनव काव्य-कृति “नर्मदा के नरम कंकर” में उनकी प्रयोगधर्माता और छन्द-प्रयोगों को सहज ही देखा जा सकता है। प्रस्तुत अनुवाद उन्होंने ‘मेरी भावना’ की लय पर ज्ञानोदय छन्द में किया है। अनुवाद में आचार्यश्री ने काफी स्वतन्त्रता ली है और मूल श्रुति के साथ ही अपनी भावनाओं को भी अभिव्यक्ति कर दिया है। इस दृष्टि से इसे छायानुवाद कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। जहाँ तक काव्य-सौन्दर्य का प्रश्न है, “गोम्मटेश अष्टक” अद्वितीय है, किन्तु किसी स्तुति के लोकप्रिय होने में जिन तत्त्वों की आवश्यकता होती है, वे इसमें उतने नहीं हैं जितने अपेक्षित थे। कुल मिलाकर अनुवाद सरल, प्रवाहयुक्त और सरस है।

पाँचवाँ अनुवाद डॉ. नेमीचन्द्र जैन का है। डॉ. जैन कवि नहीं हैं, किन्तु सहृदय हैं, और काव्य की मार्मिकताओं से अनभिन्न नहीं हैं। अनुवादक ने प्रयत्न किया है कि प्राकृति की सहजता की रक्षा की जाए और लोकप्रियता के तत्त्वों का निर्वाह करते हुए एक ऐसा अनुवाद किया जाए जो मूल के साथ न्याय करता हो और काव्य की धरती पर अनुर्वर साबित न हो। उसे विश्वास है वह वैसे करने में सफल हुआ है और एक संतुलित अनुवाद इस रूप में सामने आ सका है।

जिन अनुवादों की चर्चा हमने ऊपर की है उनमें से प्रत्येक की अपनी विशेषताएँ हैं। तुलनात्मक समीक्षा के लिए हम इनमें से प्रत्येक की छन्दान्त-पंक्ति यानी टेक को नीचे दे रहे हैं :

नेमिचन्द्राचार्य : “तं गोम्मटेशं पणमामि णिच्च”।

लक्ष्मीचन्द्र जैन : “नित्यं मे उत गोम्मटेश्वरं को नमू”।

नाथूराम डोंगरीय जैन : “विश्ववन्द्यं उन गोम्मटेश प्रति शत-शत बारंबार प्रणाम”  
“विश्ववन्द्यं उन गोम्मटेश प्रति शत-शत बार विनम्र  
- प्रणाम ॥२॥

“विश्ववन्द्यं उन गोम्मटेश प्रति शतशः बारंबार प्रणाम ॥३॥

“विश्ववन्द्यं उन गोम्मटेश प्रति बारंबार विनम्र प्रणाम ॥४॥

(५, ६, ७ और ८ छन्दों की टेक प्रायः इसी तरह की हैं। अनुवादक ने ‘शत-शत’ ‘शतशः’ ‘विनम्र’ आदि शब्दों में परिवर्तन किया है। वस्तुतः वह कोई ऐसी पंक्ति खोज पाने में असमर्थ रहा है जो पुनरावृत्ति में भी संगीत का रस देती हो और जिसे बार-बार कहने में कोई ऊब या थकान न आती हो।)

नीरज जैन : "गोमटेश के श्रीचरणों में बार-बार सिर नाऊँ" ।  
 आ. विद्यासागर : "गोमटेश जिन-पाद-पद्म की पराग नित मम मति पीती ।"  
 "निरालम्ब वे नभ-सम शुचि मम गोमटेश को वन्दन हैं ।"  
 "गोमटेश प्रभु तभी सदा मम तुम पद में मन निवस रहा ।"  
 "गोमटेश तुम नमन तुम्हें हो सदा चाह बस मन वशि हो ।"  
 "गोमटेश प्रभु के प्रति प्रतिपल वन्दन अपित तन-मन है ।"  
 "गोमटेश स्वीकार नमन हो धुलता मन का मैल रहे ।"  
 "गोमटेश तुममें मम इस विध सतत राग हो, होत चला ।"  
 "इसीलिए बस गोमटेश जिन मम मन-में अब वास किये ।"  
 (आचार्यजी ने टेक में "गोमटेश" मम" "मन" इत्यादि को छोड़ शेष में काफी परिवर्तन किये हैं। यह उनकी सृजनधर्मिता का द्योतक है। सही है कि उनके बहुत सारे शब्द बोलीगत/परम्परित हैं तथापि परिवर्तन और प्रयोग की ललक बराबर बनी हुई है।)

नेमीचन्द्र जैन : "नित प्रणाम मेरे नतशिर गोमटप्रभु तुमको ।"

इन छन्दान्त-पंक्तियों को एक साथ देखकर भी वैविध्य इत्यादि का अनुमान लगाया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त कतिपय स्तवन/स्तुतियाँ हैं, जो मौलिक और कवित्वपूर्ण हैं। इनमें कविवर कल्याणकुमार "शशि" और भगवत्स्वरूप भगवत् के स्तवन उल्लेख्य हैं। -दे.सं.१, पृ. ७५-७७, ७८-९०। यद्यपि दोनों वर्णन प्रधान हैं तथापि सरल, सुबोध और जानकारी-समृद्ध हैं। इनमें कोई काव्य-शास्त्रीय जटिलता नहीं है। ये बिलकुल सादा, सुगम शैली और भाषा में प्रणीत हैं। स्व. भगवत् जैन का स्तवन लोकमन को सहज ही आकर्षित करता है क्योंकि उसमें एक तरह का लोक-संगीत है और उसके कथासूत्र सुस्पष्ट और मार्मिक हैं। कवि को उन स्थलों की पूरी पहचान है जो मर्मस्पर्शी हैं और गोम्मटेश्वर के व्यक्तित्व को सही ढंग से अंकित करने का सामर्थ्य रखते हैं।

इनके अलावा मिश्रीलाल जैन का महाकाव्य है जो गोम्मटेश्वर-कथा को सफलतापूर्वक प्रस्तुत करता है। "गोम्मटेश्वर" की भाषा प्रांजल, कल्पना को झेलने वाली, ललित, नाद-सौंदर्ययुक्त और सहज/स्वाभाविक है। कवि को बाहुबली-प्रसंग के मर्मस्थलों की सही पहिचान है और वह ऐसी कल्पना-प्रवणता से लैस है जो उसे पूरे सौष्टव के साथ प्रस्तुत कर सके।

इतना सब होते हुए भी अभी नाना संभावनाएँ हैं जिनका पूरा उपयोग किया जाना चाहिये। बाहुबली-जीवन पर अभी अनेक मौलिक/अनूदित कृतियों आनी चाहिये ताकि युद्ध-संश्रुत जीवन को अ-युद्ध/शान्ति का संदेश दिया जा सके और मानवता को नवोत्थान देने वाली स्थितियों को उभारा जा सके। जहाँ तक अनुवाद का प्रश्न है क्या लक्ष्मीचन्द्र जैन, नीरज जैन इत्यादि प्राकृत के जैन सिद्धान्त-ग्रन्थों के अनुवाद का दायित्व नहीं उठा सकेंगे? यदि कोई संस्थान-प्रकाशन/शोध इस दिशा में पहल करता है तो काफी-कुछ काम हो सकता है।

(प्रस्तुत लेख-लेखन के बाद लेखक को बाबू रतनलाल जैन द्वारा श्री कुन्धु-सागर स्वाध्याय सदन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित गोम्मटेश-शुद्धि के अवलोकन का सौभाग्य भी मिला है, जिसमें खुरई-मण्डल के ५ हिन्दी-अनुवाद और संकलित हुए हैं; अनुवादक हैं फूलचन्द्र 'पुष्पेन्दु', कु. कल्पना जैन, कोमलचन्द्र 'मृदुल', विश्वकर्मा 'प्रशान्त' पं. 'कमलकुमार' 'कुमुद'। सारे अनुवाद सरल हैं, किन्तु उनमें काव्य की उदात्तता अनुपस्थित है, संभव है जल्दी के कारण ही वैसा हुआ है। कुल मिलाकर संपूर्ण पुस्तिका स्तुत्य और संकलनीय है। यदि इसका प्रकाशन/प्रस्तुतीकरण किंचित् कलापूर्ण होता है तो ग्रह सोने में सुहागा की कहावत सौ फीसदी चरितार्थ करती।)

—संपादक

संदर्भ :

१. श्रवणबेलगोल और दक्षिण भारत के अन्य जैन तीर्थ: राजकृष्ण जैन; वीर सेवा मन्दिर, १ दरियागंज, दिल्ली; प्र. सं. १९५३; पृ. ९१; "श्रवणबेलगोल-स्तवन," कल्याणकुमार 'शशि' पृ. ७५-७७; "बाहुबलि-स्तवन", भगवत्स्वरूप जैन, पृ. ७८-९०।
२. गोम्मटेश शुद्धि, मूल-नेमिचन्द्राचार्य; गद्यानुवाद-एलाचार्य मुनि विद्यानन्द; जैनमठ, श्रवणबेलगोल; प्र. सं. १९७९; पृ. ८।
३. वही; श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर; द्वि. सं. १९७९; पृ. ८; सचित्र।
४. वही; जैन मठ, श्रवणबेलगोल; तृ. सं. १९७९; पृ. १६; सचित्र।
५. जय गोमटेश्वर; अक्षयकुमार जैन; स्टार पॉकेट बुक्स, आसफअली रोड, नई दिल्ली-२; १९७९; पृ. ११२; पूजा, ९३-९५, अभि. जयमाल-पृ. ९६-१०३।
६. गोमटेश अष्टक; मूल-नेमिचन्द्राचार्य; पद्यानुवाद-आचार्य विद्यासागर; श्री मुनि संघ स्वागत समिति, सागर, मध्यप्रदेश; १९८०; पृ. १६।
७. अन्तर्द्वन्द्वों के पार गोमटेश्वर बाहुबली; लक्ष्मीचन्द्र जैन; भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली-१; प्र. सं. १९७९; पृ. १५०; गोम्मटेश शुद्धि, पद्यानुवाद, पृ. ११९-२०।

(शेष पृष्ठ ११२ पर)

## श्वेताम्बर-साहित्य में भरत-बाहुबली

साहित्य के अतिरिक्त शिल्प और चित्रकला में भी कहीं इन दोनों महापुरुषों का, कहीं अकेले भरत का या अकेले बाहुबली का अंकन/चित्रण हुआ है।

□ अजरचन्द्र नाहटा

गत २५०० वर्षों में ऋषभदेव की तरह भरत और बाहुबली से संबन्धित साहित्य की रचना हुई है। श्वेताम्बर-संप्रदाय में चक्रवर्ती भरत को प्रधानता देते हुए साहित्य का निर्माण हुआ है, क्योंकि भरत ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र थे और प्रथम चक्रवर्ती थे, जबकि दिगम्बर संप्रदाय में बाहुबली को प्रधानता दी गयी है। इस लेख में भरत-बाहुबली से संबन्धित श्वेताम्बर-साहित्य का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्वेताम्बर १२ उपांग सूत्रों में 'जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र' में भगवान् ऋषभदेव का संक्षिप्त चरित्र देने के बाद चक्रवर्ती अधिकार में भरत की छह खण्ड साधना यानी दिग्विजय का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। तत्पश्चात् वीर निर्वाण सं. ५३० तदनुसार विक्रम सं. ६० में विमलसूरि-रचित 'पउमचरिय' के चौथे उपदेश में ऋषभ-जिन-चरित के साथ भरत-बाहुबली का संक्षिप्त वर्णन मिलता है। विक्रम क्री ५ वीं शताब्दी के लगभग संघदासगणि-रचित 'वमुदेवहिण्डी' नामक विशिष्ट प्राकृत कथा-ग्रन्थ के चौथे नीलयशा-लंभक में भ. ऋषभदेव का और ५ वें सोमश्री-लंभक में भरत-बाहुबली के युद्ध, दीक्षा और ज्ञानोत्पत्ति का विवरण पाया जाता है। इसी तरह आवश्यक सूत्र की नियुक्ति पर विक्रम सं. ७३३ में जिनदासगणि ने चूर्ण रची, उसमें ऋषभदेव के चरित्र में भरत-बाहुबली का चरित्र भी दिया गया है। आवश्यक सूत्र की हरिभद्रसूरि और मलयागिरि की टीकाओं में भी इन तीनों के चरित्र हैं।

'भरतबाहुबलिमहाकाव्यम्' ( संस्कृत ) श्री पुण्यकुशलगणि द्वारा रचित महाकाव्य है। इसकी पंजिकायुक्त एक खण्डित प्रति तेरापन्थी शासन संग्रहालय में है। एक प्रति आगरा में विजयधर्मसूरि ज्ञान मन्दिर में है, जिसमें पंजिका नहीं है। अद्यावधि अप्रकाशित इस काव्य को जैन विश्व भारती, लाडनूँ ने सन् १९७४ में प्रकाशित किया। इसको दोनों प्रतियों के आधार पर संपादन और खण्डित श्लोकों की पूर्ति मुनिश्री नथमलजी (अब श्री युवाचार्य महाप्रज्ञ) ने किया है और हिन्दी-अनुवाद मुनिश्री दुलहराज ने किया है।

वि. सं. ११५ में नागौर में जयसिंहसूरि-रचित धर्मोपदेशमालावृत्ति तथा इस ग्रन्थ की अन टीकाओं में जो वि. सं. ११९१ में मलधारी विजयसेनसूरि और

वि. सं. १३२२ में मुनिदेवसूरि-रचित हैं, उन टीकाओं में भी भरत चक्रवर्ती का चरित्र मिलता है। वि. सं. ९२५ में शीलाकाचार्य-रचित 'चउपुत्र महापुरुष चरियं' में भी भरत का चरित्र वर्णित है। इस तरह के 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित' संबन्धी ग्रन्थों तथा ऋषभदेव-चरित्र-संबन्धी सभी ग्रन्थों में भरत-बाहुबली का प्रसंग ही आता है। वि. सं. ११६० में वर्धमानसूरि-रचित प्राकृत के १२००० श्लोक के वृहद् ऋषभ चरित्र में और महाराजा कुमारपाल की प्रार्थना से रचित हेमचन्द्रसूरि के 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित' (महाकाव्य) के पहले पर्व में और मेघविजय उपाध्याय-रचित 'लघु त्रिषष्टि पुरुष चरित' के सार में सिद्धराज तथा कुमारपाल के मंत्री पृथ्वीपाल की प्रार्थना से रचित हरिभद्रसूरि के जिन-चरित्रों में वि. सं. १२४१ में सोमप्रभाचार्य-रचित कुमारपाल प्रतिबोध, नियचन्द्रसूरि-रचित आदिनाथ चरित्र, देवेन्द्रसूरि-रचित श्राद्धदिन कृत्य, मन्त्री पद्म की प्रार्थना से रचित अमरचन्द्रसूरि के पद्मानन्द महाकाव्य, मेरुतुनसूरि के धर्मोपदेश-सूत विवरण (महापुरुष-चरित्र) के प्रथमसर्ग में, सं. १४३६ में जयसेनसूरि-रचित उपदेश चिन्तामणि की स्योपद् टीका, सं. १४९० में जिनभद्रसूरि-रचित कर्पूर प्रकर टीका, सं. १५४० प्रतिष्ठासोम-रचित कथा महोदधि, सं. १५०३ में रचित 'युगादिदेशना' के ५. वें उल्लास में शुभ-शील गणि-रचित 'भरतेश्वर-बाहुबली वृत्ति' आदि संस्कृत-प्राकृत के अनेक ग्रन्थों में भरतेश्वर-बाहुबली की कथा वर्णित है। इसी तरह मरु गुर्जर भाषा में भरतेश्वर बाहुबली-संबन्धी अनेक काव्य रचे गये हैं। उनका संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है :

१. शालिभद्र सूरि-रचित 'भरतेश्वर-बाहुबलि रास'-गाथा २०५, सं. १२४१ में लिखा गया मरु-गुर्जर भाषा का सह प्रथम चरित-काव्य है। इस रास के दो संस्करण प्रकाशित हुए हैं। पहला संस्करण में लालचन्द भगवानदास गांधी का आधुनिक गुजराती के छायानुवाद-सहित सं. १९९७ में प्रकाशित हुआ। यह छायानुवाद सं. १९८४ में किया गया था। इस संस्करण की ६४ पृष्ठीय प्रस्तावना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। दूसरा संस्करण मुनि जिनविजयजी द्वारा संपादित भारतीय विद्या-पत्रिका में मूल पाठ प्रकाशित हुआ था। वैसे हिन्दी के दो ग्रन्थों में भी वह मुद्रित हुआ है।

२. भरतेश्वर-बाहुबलि घोरव्रजसेनसूरि-रचित लघुकाव्य जैसलमेर-भण्डार की प्रति में मुझे ही प्राप्त हुआ था और मैंने उसे शोध-पत्रिका के खण्ड ३, अंक २ में प्रकाशित करवा दिया था।

३. भरतेश्वर बाहुबलि पवाडा या प्रबन्ध - गुणरत्नसूरि ने संवत् १५३० के लगभग रचा था। यह प्रबन्ध अभी तक अप्रकाशित हैं। इसमें ३९७ गाथाएँ हैं। यह प्रकाशन-योग्य है।

४. भरत-बाहुबलि रास - तेजवर्धन का १५ वीं शताब्दी में रचित कर उल्लेख 'जैन गुर्जर कवियों' भाग १ में हुआ है, इसकी प्रति कहाँ है, इसका निर्देश वहाँ नहीं किया गया है।

५. भरत-बाहुबलि रास - जिनसाधुसूरि के सहुआलानगर में लिखित ३२३ पद्यों का यह काव्य अप्रकाशित है। 'जैन गुर्जर कवियों' भाग ३ में इसके आदि एवं अन्त के पद दिये गये हैं।

६. भरत-बाहुबलि रास-राजस्थानी भाषा का यह सबसे बड़ा काव्य छह खंडों और ८४ ढालों में खरतरगच्छ के भुवनकीर्तिगणि ने सं. १६७१ में जैसलमैर में तैयार किया। इसकी प्राचीन प्रति देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फंड, सूरत के संग्रह में और दूसरी सं. १६९० की लिखी हुई प्रति बीकानेर के जयचन्द्रजी के भंडार में है।

७. भरत-बाहुबलि रास-खंभात के सुप्रसिद्ध श्रावक-कवि रिषभदास ने सं. १६७८ में रचना की। यह 'आनन्द काव्य महोदधि' भाग ३ में प्रकाशित हुआ है, इसमें भी ८४ ढालें हैं।

९. छोटी रचनाओं में भरत चक्रवर्ती फागु (१५ वीं शताब्दी), भरत-बाहुबलि छन्द लक्ष्मीवल्लभ-रचित (१८ वीं शताब्दी) आदि रचनाएँ भी मेरे संग्रह में उपलब्ध हैं।

अनेक श्वेताम्बर मन्दिरों में भी भरतेश्वर-बाहुबली की मूर्तियाँ मन्दिर में भी कायोत्सर्ग रूप में दो प्रतिमाएँ हैं। आबू के विमल-वसही में भरतेश्वर बाहुबली के युद्ध का शिल्प सं. १२०६ के आसपास का बताया गया है। शत्रुजय तीर्थ का एक शिखर बाहुबली के नाम से प्रसिद्ध है और तलहटी के मन्दिर आदि में बाहुबली की मूर्तियाँ हैं। कल्पसूत्र की कई प्राचीन सचित्र प्रतियों में भरत-बाहुबली के चित्र भी पाये जाते हैं। इस तरह साहित्य के अतिरिक्त शिल्प और चित्रकला में भी कहीं इन दोनों महापुरुषों का, कहीं अकेले भरत का या अकेले बाहुबली का अंकन/चित्रण हुआ है। हाल ही में श्री गणेशमुनि-रचित 'शीशमहल' नामक उपन्यास भी प्रकाशित हुआ है। □

कन्नड-हिन्दी  
यात्री-शब्द-कोश

( गतांक से आगे )

जोगु	झरना, सोता
झपाळ	पर्दा, आच्छादन
टलामु	तंलाश
टवलि	धोखा, झूठ
टवळिगार	धोखेबाज
टोप्पि	टोपी
ठमाळ	आलसी, नटखट
ठक्के	पताका, ध्वज
डब्बळ	बड़ी मुई
डोळ	खोखला, बड़ी तोंद
डोलु	ढोल
तंडल	चावल
तंपु	शीतलता, ठण्डक
तग	देर
तगदु	ठीक नहीं है
तटकु	बंद
ततग	वायु, हवा
तप्पडि	गलत क्रदम
तम्मड	विलम्ब
तारिबु	सूखी रेत
तले	सिर, मस्तक
तल्लज	उत्तमता, प्रसन्नता
तल्लण	भय, घबराहट
तवडु	भूसी, चोकर
तवरु	मायका, पीहर
तळवु	विघ्न, बाधा
तळहदि	नींव
तळि.	लाठी, डंडा
तामर	घमण्ड, अहंभाव
तालीमु	शिक्षण
तित्तिडि	इमल
तित्तिणि	भीड़भाड़
तिट्टे	पहाड़ी, टीला
तिळवळिके	ज्ञान, समझ, बुद्धि
तिळि	समझ (संबोधन)
तिळियुविके	ज्ञान, अनुभव

तिळवु
तुडग
तुत्तिद
तुवालु
तूकिरि
तूळु
तेगडु
तेट
तोणि
तोंट
तोंटिंग
थट्टु
दट्टु
दन
दिडिगतन
दिंबु
दिनसि
दिना
दुष्टतन
देशिगार
देसिमार्ग
दोडुतन
नट्टु
नट्टि
नडवु
नाडु
नाणु
नाळिकेर
निज
निडि
निशठ
निष्ठान
नुडि
नुणु
नेणु
नेल्लि
नेणु
नेरु
पंक

शान्ति, स्नेह
चौर, ठग
निपुण, चतुर
तौलिया
नाच, नृत्य
हमला, आक्रमण, आवेश
निन्दा
पानी की निर्मलता
बराबरी, समानता
बाग, उद्यान
बागवान
समुदाय, भीड़
घना, घोर
धन, गाय-बैल
रूखा स्वभाव
तकिया
अनाज
रोज
दुष्टता
कलाकार
प्रान्तीय भाषा-शैली
महानता, बड़प्पन
केन्द्रीय, बीच का
मनोहर, सुन्दर
बीच, मध्य, कटि, कमर
प्रदेश, प्रान्त, अंचल
लज्जा
नारियल
स्वाभाविक, सत्य, वास्त-
विकता
फेन, झाग
सत्य, सचाई, ईजानदारी
मसाला, चटनी
बोली, भाषा, शब्द
चिकना, मुलायम
स्मरण, याद
आंबला
रस्सी
सीघापन
पाप, मरहम

पंगड	दल, पक्ष	मच्चर	डाह
पटिक	स्फटिक	मडिवळ	धोबी
पट्टण	नगर, शहर	मदिवे	शादी-विवाह
पट्टशाले	बैठक, वाचन-भवन	मनवे	प्रार्थना, विनय
पडवल	पश्चिम दिशा	मयूल	मोर, मयूर
पनियाण	प्रसाद, मिठाई	मय्	शरीर
पन्ने	कपूर	मानुष्य	मनुष्यत्व
परंगि	यूरोपियन	मिणाक्	चमक, आभा
पराकु	स्तुति, सावधानी	मिण्णु	छोटा
पराधीनते	गुलामी, परतन्त्रता	मिळळ	चमचा
पल्लि	गांव, छिपकली	मुच्चजे	सायंकाल
पाकीटु	जेब, पाकेट	मुडल	निरुपाय, साधनहीन
पादि	मार्ग, रास्ता		व्यक्ति
पाय	नींव	मुदि	बुढापा
पावडिग	सॅपेरा	मुदु	बूढा
पावु	सांप	मेत्ते	गद्दा, बिस्तर
पिणिल	वेणी, चोटी	मेदडु	मस्तिष्क
पितूरि	षडयंत्र, विद्रोह	मेकु	होड़, स्पर्धा
पुक्कु	भय	मोच	मोक्ष, मुक्ति
पुद्गल	सुन्दर, मनोहर, शरीर	मोचक	वैराग्य, मुक्ति, भक्ति
पुस्तक (पोत्तिगे)	पुस्तक	मोचु	वैधव्य
पोग	आवारा, ढीठ	मोट	मूर्ख
प्रिबे	प्यारा, स्वामी, पति	मोस	धोखा, छल
बणगु	निकम्मा आदमी	यावत्सु	सब, समस्त
बदगु	कठोर श्रम	योजने	योजना
बिक्के	भिक्षा, भीख	रंगाजीव	चित्रकार
बिडदि	यात्रियों के ठहरने का	रय्य	संपत्ति
	अस्थायी स्थान	रल्लक	कंबल, ऊनी वस्त्र
बिड्डु	अत्यन्त श्रमसाध्य कार्य	रस्ते	मार्ग, सड़क
बिद्दण	न्यौता, भोज	रिक्कट	मौन, चुप्पी
बिन्नह	विनय, निवेदन, प्रार्थना	रुजु	हस्ताक्षर, प्रमाण
बेट्टु	कर्कश, दृढ़, कठोर	रट्टे	बाहु, भुजा
बेळळन्न	सफेद	लंच	लाच, रिश्वत
बेकुप्प	बेवकूफ	लक्कण	लक्षण
बेगुदि	संताप, मनस्ताप	लक्कक	चिथड़ा
बेवु	नीम का वृक्ष	लट्टणिगे	बेलन
बोक्के	फुन्सी, छोटा फोड़ा	वंगड	भौंड, समुदाय
मंटप	मण्डप	वंगार	स्वर्ण, सोना
मटि	टीला, पहाड़ी	वरदक्षिणे	दहेज
मंतु	मथानी, दोष, गलती	वल्लु	प्यारी, सुन्दर

बल्लकि  
 वल्लव  
 ब्सारे  
 चिपणि  
 विवेचने  
 विष्टर  
 शय्ये  
 शाब्दिक  
 शायि  
 शिले  
 संदु  
 संदेग  
 संपादने  
 संपु  
 संस्थे  
 समाय  
 सण्ण  
 सप्पे  
 सफलते  
 समाधान  
  
 सम्मार्जने  
 सरहद्दु  
 सल  
 सलिंगे  
 साल  
 सालगार  
 सावु  
 सावुकार  
 सिके  
 सीतर  
 सीमे  
 सुंक  
 मुण्ण  
 मुत्तिगे  
 सुद्धि  
 सूरि  
 सेरे  
 सोंपु  
 सोप्पु

वीणा  
 रसोइया  
 बरामदा, बैठकखाना  
 बाज़ार  
 विवेक, निर्णय  
 आसन, बैठक  
 शैया, सेज  
 वैयाकरण  
 स्याही  
 शिला, चट्टान  
 मेल, गली  
 संदेह  
 कमाई, उपलब्धि  
 सौंदर्य  
 संस्था, सभा  
 समय से, उपयुक्त क्षण में  
 छोटा, नन्हा  
 फीका  
 सफलता  
 संतोष, चित्त की शान्ति,  
 एकाग्रता  
 सफाई, बुहारना  
 सीमा  
 प्रवेश  
 अति परिचय  
 ऋण  
 ऋणदाता  
 मौत  
 साहूकार  
 सिक्का, मुद्रा  
 क्रोध  
 सीमा  
 कर, महसूल, शुल्क  
 चूना  
 हथौड़ा  
 समाचार  
 पण्डित  
 अंजलि, चुल्लू  
 सौंदर्य  
 भाजी, हरा पत्ता

सोदर  
 सोने  
 स्थापने  
 हंजर  
 हंकि  
 हगर  
 हच्चड़  
 हडि  
 हण्णु  
 हब्ब  
 हम्मद  
 हयिलु  
 हरण  
 हरद  
 हरवडि  
 हरुवि  
 हरिह  
 हल्लु  
 हस  
 हसुळ  
 हळ  
 हळदु  
 हांवु  
 हाड  
 हादि  
 हावळि  
 हासिके  
 हाळत  
 हिट्टु  
 हिडलु  
 हुंडि  
 हुगि  
 हुडग  
 हुत्त  
 हुदुवु  
 हू  
 हूवाडिग  
 हेक्कळ  
 हेज्जे  
 हेग

सहोदर, भाई  
 फुहार, बुंदाबाँदी  
 स्थापना, प्रतिष्ठा  
 पंडाल, मण्डप  
 चिडिया  
 हल्का, आसान  
 चादर  
 दरवाजा  
 फल  
 उत्सव, पर्व  
 बेहोशी, मूर्च्छा  
 घबराहट  
 प्राण, जान  
 व्यापारी, वणिक्  
 प्रकाशन, दिखावा  
 मिट्टी का हंडा  
 क्षार, प्रवाह  
 दाँत  
 निर्मल, शुद्ध  
 शिशु, बालक  
 प्राचीन  
 पुराना  
 सांप  
 गीत  
 रास्ता, पथ  
 उपद्रव, संकट  
 बिछीना  
 उचित  
 आटा  
 बुहारी  
 छोटा गांव  
 खिचडी  
 बालक, लड़का  
 बामी  
 स्नेह, रिश्ता  
 फूल, पुष्प  
 फल बेचने वाला  
 प्रचुर  
 पग, कदम  
 पागल आदमी



—श्रवणबेलगोल में भ. बाहुबली प्रतिष्ठापना सहस्राब्दि और महामस्तकाभिषेक महोत्सव/समारोह का शुभारम्भ निर्धारित आयोजनों/कार्यक्रमों के साथ गत १ फरवरी; ८१ से हो गया है, जो १५ मार्च को सम्पन्न होगा। २१ से २४ फरवरी को मुख्य समारोह के अन्तर्गत २१ को विशाल जनसभा होगी, जिसे प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी संबोधित करेंगी। जनमंगल महाकलश की शोभा-यात्रा निकलेगी और २२ से २४ फरवरी तक महामस्तकाभिषेक होगा।

—श्रवणबेलगोल में श्रमण-साधुगण त्यागी-वर्ग का अपूर्व संगम हो रहा है, जिनकी संख्या लगभग २०० होने की संभावना है। सर्व आचार्यश्री देशभूषणजी, विमलसागरजी, कुन्थसागरजी आदि संसंध विराजमान हैं। एलाचार्य मुनि श्री विद्यानन्दजी हैं ही। आचार्य शान्ति-सागर स्मारक नगर में त्यागी-वर्ग के आवास-आहार की समुचित व्यवस्था की गयी है। विशाल प्रवचन-मंडप और मंच की व्यवस्था भी की गयी है, जहाँ प्रातः ७.३० से ८.३० और अपरान्ह ३ से ४ बजे तक मुनिराज के मंगल प्रवचन हो रहे हैं।

—विध्यगिरि के चारों ओर बनाये गये ११ उपनगरों में यात्रियों के लिए आवास की सुव्यवस्था की गयी है। विभिन्न प्रान्तों के भोजनालयों की सुविधा की जा रही है।

—जैन विद्या-८१ का प्रदर्शनी-कक्ष उद्घाटनोपरान्त १५ दिनों तक प्रातः ११ से रात्रि ७-३० तक सर्वसाधारण के लिए खुला रहेगा।

—श्री जिनेन्द्र कला भारती, भीलवाड़ा की ओर से 'मान-मर्दान' (भ.गोम्मटेश मूर्ति

## समाचार - परिशिष्ट

प्रतिष्ठापना और प्रथम अभिषेक की अन्तः कथा) छड़ कठपुतली-नाटिका और 'अस्थि-ग्राम का तपस्वी' (भ. महावीर के जीवन प्रसंगों पर आधारित) कठपुतली-नाटिका का समारोह में आकर्षक प्रदर्शन किया जा रहा है।

—जनमंगल महाकलश जिसे देखकर आचार्य श्री विनोबाजी ने प्रसन्नतापूर्वक उद्गार व्यक्त किये थे कि जैनों के प्रति बाबा को बहुत आदर है। इसीलिए बाबा ने 'समणसुत्त' अनेकों की मदद से ग्रथित किया है।—ऐसे महाकलश का देश के ११ राज्यों के २२५ स्थानों की यात्रा सम्पन्न कर २० फरवरी को श्रवणबेलगोल में शुभागमन हो रहा है, जहाँ उसकी शोभा-यात्रा निकाली जाएगी। २२ फरवरी को गोम्मटेश की भव्य मूर्ति के समीप ही विध्यगिरि पर इस जनमंगल महाकलश की स्थायी रूप से स्थापना की जा रही है, साथ में आवश्यक प्रशस्ति पत्र एवं जानकारी-पत्रक के साथ कालपात्र भी गाड़ा जा रहा है। २१ लाख रुपयों की धनराशि महाकलश के माध्यम से होने की संभावना है। इससे श्रवणबेलगोल में जनहित और सार्वजनिक कल्याण के काम के लिए ११ संदस्थीय 'गोम्मटेश्वर जनकल्याण ट्रस्ट' का गठन किया जा रहा है।

—एस.डी.जे.एम.आई. मैनेजिंग कमेटी, श्रवणबेलगोल के अध्यक्ष स्वस्ति श्री चारु-कीर्ति भट्टारक स्वामी, कमेटी के अन्य सदस्य, महोत्सव कार्यकारी समिति के सदस्य, उप समितियों के सदस्यगण आदि समारोह में सफल बनाने में जुटे हुए हैं।

—आचार्य-रत्न श्री देशभूषणजी महाराज अभिनन्दन-ग्रन्थ के लिए निबन्ध एवं अन्य सामग्री प्रेषित करने के लिए ३१ मार्च, ८१ अन्तिम तिथि निश्चित की गयी है। आवश्यक सामग्री समिति के कार्यालय (१६१७, दरीबाकलां, दिल्ली-६) को भेजी जा सकती है।

—श्रमण जैन भजन प्रचारक संघ, दिल्ली द्वारा निर्मित निम्नांकित केसेट्स श्रवणबेलगोल में भी उपलब्ध रहेंगे: समयसार, छहढाला, द्रव्य-संग्रह तत्त्वार्थसूत्र, पाषाण बोलते हैं (भ. बाहुबली पर संगीत रूपक), एलाचार्य मुनि श्री विद्यानन्दजी के मंगल प्रवचन।

—श्री जिन बिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा और गजरथ महोत्सव पर कला-केन्द्र खजुराहो में आचार्य श्री विद्यासागरजी के सान्निध्य में २१-२२ जनवरी, ८१ को अ.भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् का चौदहवां अधिवेशन निर्वाचन निर्वाचित अध्यक्ष पं. (डॉ.) पन्नालालजी साहित्याचार्य (सागर) की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। पं. नाथूलालजी शास्त्री (इन्दौर) उपाध्यक्ष और डॉ. हरीन्द्रभूषणजी जैन (उज्जैन) मन्त्री मनोनीत किये गये हैं।

—इन्दौर-बनेडिया मार्ग पर देवधरम हिल्स जो इन्दौर ८ किलोमीटर दूरी पर स्थित है, पर म. प्र. शासन ने भ. बाहुबली की मूर्ति की स्थापना-हेतु स्वीकृति दी है। इस टेकड़ी का स्थानांतरण गत ५ फरवरी, ८१ को हो गया, जिसकी पूजन-विधि पं. नाथूलालजी शास्त्री द्वारा संपन्न हुई।

## नये आजीवन सदस्य रु. १५१

४५१. श्री महेन्द्र मुनि  
द्वारा : श्री चन्द्रकान्त एन. भावसार  
४४, महावीर कुंज, अडाजन रोड  
स्नेह स्मृति सोसायटी  
पो. सूरत (गुजरात)
४५२. श्री महेन्द्र मुनि  
द्वारा : श्री शान्तिलाल लक्ष्मीचन्द्र  
भावसार  
नटराज सिनेमा, खंभाती दरवाजा  
भावसार वाड  
पो. बोरसद (गुजरात)
४५३. श्री रमेशचन्द्र नेमीचन्द्र जैन  
१५१, जावरा कम्पाउण्ड  
पो. इन्दौर ४५२ ००१ (म. प्र.)
४५४. श्री राजेन्द्रकुमार ठोलिया  
बनजी ठोलिया की धर्मशाला  
जौहरी बाजार, धीवालों का रास्ता  
पो. जयपुर ३०२००३ (राजस्थान)
४५५. कु. रितु राजेन्द्रकुमारजी अग्रवाल  
द्वारा : नेशनल इन्वयोरेन्स कंपनी  
पो. धामनोद ४५४५५०  
जि. धार (म. प्र.)

‘तीर्थंकर’ के  
आजीवन सदस्य बनकर  
तीनों विशेषांक  
प्राप्त कीजिये

## महत्त्वपूर्ण/संग्रहणीय

णमोकार विशेषांक देखकर आश्चर्य-चकित रह गया। सोचता था आखिर णमोकार पर विशेषांक किस प्रकार कल्पित हो सकेगा और सामग्री का स्रोत प्रकाशित पुस्तकों ही होंगी, जिनसे किसी वैज्ञानिक दृष्टिकोण को समर्थन सन्तोषजनक रूप से संभव नहीं हो पाएगा। किन्तु आपने सदा की भ्रंति सूझ-बूझ से तो काम लिया ही है, अनेक विद्वानों और चिन्तकों को प्रेरित किया कि वे इन विषयों पर अपने विचार लिखें। अंक महत्त्वपूर्ण और संग्रहणीय हो गया है। विशेषांक-दो की अभी से प्रतीक्षा है।

—लक्ष्मीचन्द्र जैन, नई दिल्ली

## उत्कृष्ट प्रयास

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'तीर्थकर' के पिछले विशेषांकों की परम्परा में यह भी एक उत्कृष्ट प्रयास है।

मेरी दृष्टि में 'कैसर कथा' तथा नवकार साधना की सच्ची प्रक्रिया' इस अंक के सर्वोत्तम लेख हैं। सामान्य से सामान्य पाठक को उससे सही प्रेरणा तथा सही गति-मति प्राप्त होगी। पुस्तकों के सार-संक्षेप प्रस्तुत करने में यद्यपि काफी श्रम किया गया है, तथापि कुछ अधूरापन-सा अनुभव भी आता है। उदाहरण के लिए श्रद्धेय युवाचार्य महाप्रज्ञजी ने णमोकार मन्त्र की साधना के साथ बिबिध रंगों के संयोजन (कलर थैरेली) की जो संगति बिठायी है (पृ. ८०-८१), संक्षेप के चक्कर में वह पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो सका है। उस संदर्भ में संभव हो तो अगले खण्ड में कुछ विस्तारपूर्वक छापिये।

पूज्य एलाचार्यजी की बातचीत से श्वासोच्छ्वास-संबन्धी गणित की यथार्थ

जानकारी नहीं मिलती है (पृ.-९५) पूरी विधि को समझने के लिए कुछ अधिक विस्तार अपेक्षित है। प्रो. जी. आर. जैन लेख ध्वनि के प्रभुत्व का वैज्ञानिक विश्लेषण करने में सक्षम है। वह एक उच्च-स्तरीय लेख है, किन्तु णमोकार मन्त्र के ध्वन्यात्मक प्रभाव को और भी विस्तारपूर्वक, साथ ही बहुत सरलता से समझने/जानने के लिए आप उनसे तथा श्री गणेश ललवानी सरीखे विद्वानों से अभी कुछ और लिखने का आग्रह पाठकों की ओर से करने की कृपा करें ?

यात्री-शब्द कोश का सामयिक महत्त्व निर्विवाद है।

विशेषांक के इस प्रथम खण्ड ने दूसरे खण्ड के लिए पाठक के मन में एक बेचैनी उत्पन्न कर दी है। हम उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आपके नौ व्याख्यानों को पढ़ने के लिए मन बहुत आतुर है।

—नरेन्द्रप्रकाश जैन, फीरोजाबाद

## बुनियादी कार्य

महामन्त्र विशेषांक की सामग्री के संयोजन में आपने श्रद्धापूर्वक अथक परिश्रम किया है। महाप्रज्ञ मुनि नथमलजी, सुशीलकुमारजी, जैनेन्द्रजी, रजनीशजी आदि मूर्धन्य चिन्तकों के शब्द भी मन्त्र जैसे ही अर्थ-गंभीर और शक्तिपूर्ण होते हैं। हमारे द्रव्यार्थिक (द्रव्य-अर्थ प्रधान) थे समाज को मुनिश्री नथमल के ये शब्द निश्चय ही सोचने के लिए विवश करेंगे कि यह महामन्त्र कामना-पूर्ति करने वाला नहीं, अपितु कामना को समाप्त करने वाला है। वस्तुतः आप 'तीर्थकर' के माध्यम से समाज-चेतना का, विचार-क्रान्ति का बुनियादी कार्यकर रहे हैं।

—जमनालाल जैन, वाराणसी

## बे-नमून

विशेषांक १ पूरा पढ़ लिया। विविधता, नावीन्य और सामग्रीपूर्णता की दृष्टि से वह बे-नमून है। संप्रदाय विशेष का आग्रह छोड़कर जो चयन हुआ है वह मन्त्र की सच्ची आराधना-स्वरूप है। जानकारी के इच्छुक का भी वह पूर्ण संतोषप्रद रहेगा। मन्त्र-विषयक ग्रन्थों की सूची जिज्ञासुजन की कामना की पूर्ति करेगा, इसमें जो साधकों ने इसके जो प्रयोग किये हैं उसमें से दो-तीन अनुष्ठान की पूरी विधि देने की जरूरत है। नए आराधकों के लिए वह मार्गदर्शक और प्रेरणादाता बनेगी और कुछ नये जप के स्वामी तैयार होंगे।

तीर्थंकरों की सब से छोटी देशना नमोकार मन्त्र अनादि से है और भविष्य के लिए वह ही रहने वाली है। 'तीर्थंकर' ने अच्छी तरह से प्रतिपादित करने का प्रयास किया है।

—श्री कपिलभाई कोटडिया, हिम्मतनगर

## असीम ऊँचाइयों को नापने वाला

णमोकार मन्त्र विशेषांक के लिए शतः वन्दन एवं अभिनन्दन ! जैसे शौध-मेन्द्र हजार आँखों से भी भगवान के रूप को निहारकर अतृप्त रहा, इस विशेषांक को देखकर और पढ़कर उतनी ही अतृप्ता समा गयी। जितना पढ़ता हूँ, प्यास उतनी ही गहरी होती जाती है। असीम ऊँचाइयों को नापता यह अप्रतिम विशेषांक जिसने लगता है क्षीरसागर को कलश में कैद कर लिया।

पुस्तकों के संक्षिप्तीकरण में संक्षेप-कार ने कृतियों के प्रति पूरा न्याय बरता है। 'मंगल मन्त्र णमोकार : एक अनुचितन' का सारभूत नवनीत 'णमोकार : आत्मानु-शासन का अप्रतिम स्रोत' लिखकर प्राणिनि की भाँति पूरे व्याकरण को सूत्रों में निबद्ध करने की भाँति प्रयास किया। भले ही

भगवान रजनीश को सम्यक्ती न झेक सके लेकिन आचार्य रजनीश के मौलिक चिन्तन 'दिव्य लोक की कुंजी' से किसी की अणुमात्र की असहमति नहीं। अनन्त की अनुभूति में तैरती 'महाप्रज्ञ' की महामन्त्र के प्रति विविध कसौटियाँ कितनी खरी उतरी हैं। शब्द से अर्थ, अर्थ से भाव और भाव से अनुभूति में उतर जाना मन्त्र की अचिन्त्य शक्ति है।

मनीषियों और चरित्र-शिरोमणि साधकों से एक सुविज्ञ संपादक की बातचीत भी मन की कितनी अर्गलाओं को खोलकर ज्ञान की डगर बन जाती है यह जाना है बातचीत पढ़कर।

'प्रलयंकर' का क्रान्तिस्वर कितना प्रांजल होकर शाब्दिक चमत्कारों के नामों को अस्पृशित करता पंचपरमेष्ठियों को पाँच सूत्रों में निबद्ध कर दिया—अरिहंत का मार्ग महन्त का मार्ग नहीं, सिद्ध है-पुरुषार्थ-सिद्धि से सर्वार्थसिद्धि की सफल यात्रा, आचार्य विश्वविद्यालय का बोना आचार्य नहीं अपितु जिनका आचरण स्वस्थ विचारों का प्रतिबिम्ब है, उपाध्याय जीवन के अध्यापक और साधु जो अणुभर लेकर जी भर लौटाता है, कितनी ललित व्याख्यायें जोड़ी हैं विशेषांक की मणिमाला में।

—निहालचन्द्र जैन, नोगांव

## अभिनन्दनीय/वन्दनीय

विशेषांक में णमोकार मन्त्र द्वारा मनः स्थिति को अचंचल बनाने की अपूर्व अन्त-चेतना है, जो पूरे अंक में विविध रूपों में प्रस्फुटित है। श्रम-साध्य प्रश्नोत्तरों के माध्यम से जो मन्त्र सामर्थ्य उकरी है वह गहनतम अलभ्य पैठ पर आश्रित है। णमोकार के सर्वेक्षण का यह मन्त्र सर्वथा अभिनन्दनीय तथा वन्दनीय है।

—कल्याणकुमार जैन 'शशि', रामपुर

QUALITY AND RUGGEDNESS HAS PUT US AS ORIGINAL EQUIPMENT ON PREMIER PADMINI CARS, MAHINDRA JEEPS, DODGE TRUCKS AND MANY OTHER LEADING VEHICLES AND TRACTORS MANUFACTURED IN INDIA AND ABROAD.

# **BHARAT RADIATORS PRIVATE LIMITED**

*Regd. Office & Factory :*

Vidyanagari Marg,  
Santacruz (East),

**BOMBAY-400 098**

Tel Nos. : 532965, 543457

Grams : "PRESSWORK"

*Branch Office :*

D-60 Industrial Estate,  
S. A. S. Nagar, **MOHALI**,  
(Near Chandigarh),

Dist : Ropar-160 055

*Head Office :*

81, Bajaj Bhavan,  
Nariman Point,

**BOMBAY-400 021**

Tel. No. : 221497, 230085

Telex : 011-4661

Grams : "SMOOTHRUN"

With best Compliments from :-

# P. S. JAIN MOTORS

GRAND TRUNK ROAD

JULLUNDUR CITY



*Authorised Dealers for :*

**TATA DIESEL VEHICLES AND SPARE PARTS  
FOR PUNJAB**

Grams : PASJAN

Tel. No. 73530

75972

2884

TLX No. 2781-ND



**BRANCHES :**

1. 7A, Rajpur Road,  
DELHI—110054  
Tel. No. 227410/223720
2. Gurdaspur Road,  
PATHANKOT  
Tel. No. 347
3. Roshan Road,  
HOSHIARPUR
4. Nagrota Bagwan,  
Distt. KANGRA

*With Best Compliments*

*from :*

## **CARONA SAHU Co. LTD.**

221, Dr. D. N. Road,

**BOMBAY-400 001**

*MAKERS OF QUALITY FOOTWEAR*

---

### **KNOW WELL ABOUT THE RAW MATERIALS YOU USE**

- WHETHER IT IS :
- CAUSTIC SODA
  - SODA ASH
  - CHLORO-SOLVENTS
  - SODA BICARB
  - CALCIUM CHLORIDE
  - UPGRADED ILMENITE,  SALTS

*Produced by us*

OUR TECHNICAL SERVICE DEPARTMENT WILL  
HELP YOU PRODUCE QUALITY PRODUCTS.

*Please write to :*

### **Dhrangadhra Chemical Works Ltd.**

NIRMAL, 3rd Floor, 241, Backbay Reclamation,  
Nariman Point, BOMBAY-400 021

Gram : SODACHEM

Telex : 011-2362

Phone { 234330, 234278  
234427, 230743

DCW—Working to a “CHEMICAL” future

(पृष्ठ ९७ का शेष)

८. श्री गोमटेश बाहुबली जिनपूजा; नीरज जैन; सुषमा प्रेस, सतना, मध्यप्रदेश; १९८०; पृ. ८; जयमाल, पृ. ६-८ ।
९. द्रव्यसंग्रह-दीपिका; नाथूराम डोंगरीय जैन; जैन साहित्य प्रकाशन, इन्दौर; १९७९; पृ. ५८; श्री गोमटेश संस्तवन, पृ. ६ ।
१०. बाहुबलि-आख्यान/महापुराण-अंश/; कवि पुष्पदन्त; अनु. डा. देवेन्द्रकुमार जैन जैन मठ, श्रवणबेळगोळ; १९८०; पृ. १२४; गोमटेश-स्तुति, पृ. १२३-२४, पद्यानुवाद ।
११. "नित्य नमन" ("गोमटेश थुदि" का हिन्दी-पद्यानुवाद); अनु. डॉ. नेमीचन्द; "तीर्थकर", जन. १९८१; "णमोकार मन्त्र विशेषांक-२", आव. पृ. ३ ।
१२. गोमटेश्वर (काव्य); मिश्रील ल जैन; राहुल प्रकाशन, गुना, मध्यप्रदेश; १९८०; पृ. सं. ११८ ।
१३. भरतबाहुबली (संगीत नाटक); हल्केलाल जैन; श्री बुन्देलखण्ड स्याद्वाद परिषद्, मडावरा; द्वि. सं. १९७९; पृ. ३४ ।
१४. भरतबाहुबलि महाकाव्यम्; मूल-पुण्यकुशलगणि, अनु. मुनि दुलहराज; जैन विश्व भारती, लाडनू, राजस्थान; प्र. सं. १९७४; पृ. ५१८ । □

## श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति

५५, सीतलामाता बाजार, इन्दौर-४५२००२ के

बहुप्रशंसित मननीय प्रकाशन

अनुत्तर योगी तीर्थकर महावीर	: वीरेन्द्रकुमार जैन	रु. पै.
(उपन्यास, खण्ड १, २, ३)		प्रत्येक का मूल्य ३०.००
तीर्थकर महावीर (महाकाव्य)	: डॉ. छैलबिहारी गुप्त	३०.००
तीर्थकर वर्धमान महावीर	: पं. पद्मचन्द शास्त्री	८.००
महावीर: जीवन में ?	: स्व. माणकचन्द कटारिया	५.००
वेशाली के राजकुमार	: डॉ. नेमीचन्द जैन	४.००
परम तपोधन एलाचार्य श्री विद्यानन्द	: डॉ. नेमीचन्द जैन	८.००
छहढाला	: पं. दौलतराम	३.००
गोमटेश थुदि	: आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती	०.५०
नर्मदा के नरम कंकर	: आचार्य विद्यासागर	५.००

सभी पुस्तकों का डाक-व्यय पृथक्

विश्वधर्म-प्रेरक एलाचार्य श्री विद्यानन्दजी की समस्त पुस्तकें उपलब्ध हैं ।  
सूचीपत्र और अन्य जानकारी के लिए समिति से संपर्क कीजिये ।

(अक्षरदेह : आवरण ४ का शेष)

बोष्पण सुन रहे हैं  
उनका मन द्रवित है  
वे अब 'वे' नहीं रहे हैं  
उनका 'मैं' गल गया है  
वे बाहुबली के युग में ही जैसे पहुँच गये हैं ।  
कवड्डमय ने उन्हें छुआ है  
पर अब उन्हें लौटाना कठिन है ।

भगवान् आदिनाथ उनके सामने हैं  
नीलांजना का नृत्य चल रहा है  
नाचते-नाचते वह दिवंगता हुई है  
एक और नीलांजना ने उसका स्थान ले लिया है  
आदिनाथ संसार का छल समझ गये हैं  
उनके पाँव वन की ओर प्रस्थित हैं  
राज्य बाँट दिया गया है  
भरत को अयोध्या, बाहुबली को पोदनपुर ।

भरत चक्रवर्ती हैं  
दिग्विजय की दुन्दुभि बज रही है  
वे लौट आये हैं  
चक्र ने प्रवेश से इन्कार किया है  
सब व्याकुल हैं, व्यथित हैं,  
अब क्या हो ?  
बाहुबली के सम्मुख भरत-दूत खड़ा है  
बाहुबली का स्वाभिमान उदग्र हुआ है  
आखिर रिक्थरूप आदिनाथत्व उन्हें भी मिला है ।

उन्होंने युद्ध घोषित कर दिया है  
किन्तु मन्त्रियों ने युद्ध को समूह से हटाकर व्यक्ति तक सीमित/नियन्त्रित कर  
दिया है ।

जल, दृष्टि, मल्ल तीनों युद्ध भरत हार गये हैं  
चक्र लौट आया है  
बाहुबली के पग सत्ता से हट कर परमसत्ता की ओर उठ गये हैं ।  
भरत के मन में गहन अनुताप है  
पर अनुज के उठे पग लौट नहीं रहे हैं ।

बाहुबली  
आत्मोन्नयन की दिशा में पुरश्चरित हैं ।

कुक्कुट साँपों ने बामिर्याँ बना ली हैं  
पक्षी नीड़ रचे सुख से उनके तन को नगर बनाये चहक रहे हैं,  
किन्तु वह परम तपोधन अविचल खड़ा है । (शेष पृष्ठ ३३ पर)



## अक्षरदेह

एक सुबह

ईस्वी सन् ग्यारह सौ अस्सी की  
कर्नाटक के महान् यशस्वी कवि बोप्पण

अवाक् स्तब्ध

खड़े हैं गोम्मटेश्वर की विशाल प्रतिमा के सम्मुख  
सोच रहे हैं कैसी मनीषा है कि पाषाण भी जी उठा है !

पोदनपुर का खयाल आ रहा है

कुक्कुट सर्प रेंग रहे हैं विद्युत्गति से  
सारी प्रतिमा उनकी बामियों से आच्छादित है

सब कुछ धूमिल हुआ है

अतीत के पार कहीं कुछ सूझ नहीं पड़ रहा है

सबकुछ असूझ/आँखों से परे हुआ है;

किन्तु

यह क्या ?

सामने उपस्थित है अध्यात्म का एक महान् शिखर !!!

बोप्पण अनुभूतियों के महासिंधु में डूबे हैं

उनकी आँखें बन्द हैं

पलकों पर सपन आ-जा रहे हैं

लग रहा है जैसे कोई महाकाव्य रचना की प्रक्रिया में स्पन्दित है

सिंदूरी किरणें विन्ध्यशिखरों को छू रही हैं

चारों ओर सोना बरसने को है

बालसूर्य क्षितिज पर उठ रहा है

दृश्य बदल रहे

बोप्पण की समाधि टूटने को है

वे देख रहे हैं कि कवल्डमय देवन उनके पास ही बैठा है

वह मुनि बालचन्द्र का प्रिय शिष्य है

और अंजलिबद्ध प्रार्थना कर रहा है—

“महाकवे, कोई स्तुति दें जो उतनी ही कोमल-कान्त हो जितनी

यह महान् प्रतिमा है।”

(शेष आवरण ३ पर)

(भगवान् बाहुबली प्रतिष्ठापना सहस्राब्दि-महोत्सव के संदर्भ में  
जैन मठ, धवणबेलगोल-कर्नाटक द्वारा प्रचारित)